ओ३म्

दयानन्दसन्देश

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

मई २०१५

Date of Printing = 05-05-15
प्रकाशन दिनांक= 05-05-15

वर्ष ४४ : अङ्क ७
दयानन्दाब्द : १९२
विक्रम-संवत् : वैशाख-ज्येष्ठ २०७२
सृष्टि-संवत् : १,९६,०८,५३,११६

संस्थापक : स्व० ला० दीपचन्द आर्य
प्रकाशक व सम्पादक : धर्मपाल आर्य
सह सम्पादक : ओम प्रकाश शास्त्री
व्यवस्थापक : विवेक गुप्ता

कार्यालय :
दयानन्दसन्देश (मासिक)
४२७, मन्दिर वाली गली, नया बांस,
खारी बावली, दिल्ली-६
दूरभाष : २३९८५५४५, ४३७८११९१
चलभाष : ९६५०५२२७७८
E-mail : aspt.india@gmail.com

एक प्रति ५.०० रु०
वार्षिक शुल्क ५०) रुपये
आजीवन सदस्यता ५००) रुपये
विदेश में २०००) रुपये

इस लेख में

☐ मन्त्र गीत 2
☐ वेदोपदेश 3
☐ मर्यादा पुरुषोत्तम राम.... 5
☐ गोडसे हत्यारा 7
☐ चन्द्र बसु क्यों हैं? 12
☐ एक पत्र दुबई से 14
☐ यजुर्वेद में स्वर्ग 16
☐ मन्त्र गीत 18
☐ राष्ट्रोत्थान का सोपान... 20
☐ बन सरदार पटेल 22
☐ विवाह और गृहस्थ 24

सत्यार्थप्रकाश

प्रचार संस्करण – ३००० रुपये सैकड़ा
स्पेशल (सजिल्द) – ५००० रुपये सैकड़ा में प्राप्त करें।

मन्त्र गीत-मौन कथन

('देवातिथि' देवनारायण भारद्वाज, अलीगढ़-202001 उ.प्र.)

हो रहा सदन में सखा मिलन
तुम सुनो हृदय के सखा वचन।।
प्रभु सखा साथ में रहते हैं।
हर कृत्य तुम्हारे सहते हैं
सत्क्रियाशील हर मानव हो,
हर समय वचन यह कहते हैं।
तुम प्रभु-वचनों का करो मनन।
तुम सुनो हृदय के सखा वचन।।1।।
रे जोत देह रथ अश्व अभी।
इसमें प्रमाद हो नहीं कभी।
मृदु सुधा तुल्य व्यवहारवान,
हों प्रभा पुञ्ज सद्गुणी सभी।
हे आत्म करो परमात्म यजन।
तुम सुनो हृदय के सखा वचन।।2।।
प्रभु के दिव् पृथिवी वे ही हैं
नर के जो मस्तक देही हैं।
अपमान न कर विद्वानों का,
तेरे सर्वोदय स्नेही हैं।
तुम करो विप्र भगवान नमन।
तुम सुनो हृदय के सखा वचन।।3।।

श्रुधी नो अग्ने सदने सधस्थे युक्ष्वा रथममृतस्य द्रवित्नुम्।
आ नो वह रोदसी देवपुत्रे माकिर्देवानामप भूरिह स्याः।। (अथर्व. 18.1.25)

ओ३म्

वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। — महर्षि दयानन्द

वेदोपदेश– १. **ईश्वर** - दिव्य गुणों और सुखों का दाता तथा सकल ऐश्वर्य का विधाता है। यज्ञ का रक्षक है।

२. **यज्ञ** - वेद और विद्वान् लोग कहते हैं कि यज्ञ का प्रकाश ईश्वर ने किया है। यज्ञ से ही बृहस्पति और ब्रह्मा का पद प्राप्त होता है।

३. **ईश्वर प्रार्थना** :- हे जगदीश्वर! आप महान विज्ञान के प्रदान से यज्ञ की रक्षा कीजिए। विद्या और धर्म को मेरे हृदय में प्रकाशित करके मेरी रक्षा कीजिए।

परमेष्ठी प्रजापतिः ऋषिः। सविता = ईश्वरः देवता।
भुरिग्बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः।।
अथाग्निशब्देनोभावार्थावुपदिश्येते।।

ओ३म्– ए॒तं ते॑ देव सवितर्य॒ज्ञं प्राहु॒र्बृह॒स्पत॑ये ब्र॒ह्मणे॑।
तेन॑ य॒ज्ञम॑व तेन॑ य॒ज्ञप॑तिं तेन॑ माम॑व।। (यजु. २/१२११)

पदार्थः–(एतम्) पूर्वोक्तम् (ते) तव (देव) दिव्यसुखगुणानां दातः (सवितः) सकलैश्वर्य्यविधातर्जगदीश्वरः **(यज्ञम्)** य सुखाय यष्टुमर्हम् **(प्राहुः)** प्रकृष्टं ब्रुवन्ति **(बृहस्पतये)** बृहत्या वेदवाण्याः पालकाय **(ब्रह्मणे)** चतुर्वेदाध्ययनेन ब्रह्मत्वाधिकारं प्राप्ताय **(तेन)** बृहत्विज्ञानदानेन **(यज्ञम्)** पूर्वोक्तं त्रिविधम् **(अव)** नित्यं रक्ष **(तेन)** धर्मानुष्ठानेन **(यज्ञपतिम्)** यज्ञस्यानुष्ठानेन पालकम् (तेन) विद्याधर्मप्रकाशेन **(माम्) (अव)** रक्ष।।

सपदार्थान्वयः – हे देव! दिव्यगुणसुखानां दातः! (सवितः) = (जगदीश्वर) सकलैश्वर्य्यविधातः (जगदीश्वर)! वेदा विद्वांसश्च यमेतं पूर्वोक्तं यज्ञं यं सुखाय यष्टुमर्हं भवत्प्रकाशितं प्र + आहुः प्रकृष्टं ब्रुवन्ति, येन बृहस्पतये बृहत्या वेदवाण्याः पालकाय ब्रह्मणे चतुर्वेदाध्ययनेन ब्रह्मत्वाधिकारं प्राप्ताय सुखाऽधिकाराः प्राप्नुवन्ति, तेन बृहत्विज्ञानदानेन इमं यज्ञं पूर्वोक्तं त्रिविधं, (तेन) धर्मानुष्ठानेन यज्ञपतिं यज्ञस्याऽनुष्ठानेन पालकम् (तेन) विद्याधर्म-प्रकाशेन मां चाऽव = सततं रक्ष नित्यं (रक्ष)।।

भाषार्थ :– हे (देव) दिव्य सुख और गुणों के दातः! (सवितः) सकल ऐश्वर्य के विधाता जगदीश्वर! वेद और विद्वान् लोग जिस (एतम्) इस पूर्वोक्त सुखदायक यज्ञ को आप से प्रकाशित हुआ (प्राहुः) बतलाते हैं, जिससे (बृहस्पतये) सबसे बड़ी वेदवाणी का पालन करने वाले (ब्रह्मणे) चारों वेदों के अध्ययन

से ब्रह्मा के पद को जिसने प्राप्त किया है, उस विद्वान् को सुख एवं श्रेष्ठ अधिकार प्राप्त होते हैं, (तेन) उस महान विज्ञान के प्रदान से इस (यज्ञम्) पूर्वोक्त तीन प्रकार के यज्ञ की, (तेन) उस यज्ञ का रूप धर्मानुष्ठान से (यज्ञपतिम्) यज्ञाऽनुष्ठान से यज्ञ की रक्षा करने वाले की, और (तेन) उस विद्याधर्म रूप प्रकाश के द्वारा (माम्) मेरी भी (अव) सदा रक्षा कर।

भावार्थः– ईश्वरेण सृष्ट्यादौ गुणवद्भ्योऽग्नि-वायुरव्यङ्गिरोभ्यश्चतुर्वेदोपदेशेन सर्वेषां मनुष्याणां विद्याप्राप्तया सुखाय यज्ञानुष्ठानविधिरुपदिष्टोऽनेनैव रक्षण विधानं च।

(तेनेमं यज्ञं, यज्ञपतिं, मां चाऽव = संततं रक्ष)

नैव विद्या शुद्धिक्रियाभ्यां विना कस्यचित् सुखरक्षणे भवितुमर्हतस्तमात् सर्वैः परस्परं प्रीत्यै तयोर्वृद्धिरक्षणे प्रयत्नतः सदैव कार्ये। (मन्त्रसंगतिमाह)

यश्चैकादशेन मन्त्रेण यज्ञफलभोग उक्तस्तत्प्रकाश ईश्वरेणैव कृत इति गम्यते।।

भावार्थ :– ईश्वर ने सृष्टि के प्रारम्भ में दिव्य गुणों वाले अग्नि, वायु, रवि (आदित्य) और अङ्गिरा ऋषियों के लिए चारों वेदों का उपदेश करके सब मनुष्यों को विद्याप्राप्ति से सुखी होने के लिए यज्ञ करने की विधि का उपदेश किया तथा इसी से रक्षा की विधि भी बतलाई।

विद्या और शुद्धि क्रिया के विना किसी को भी सुख और रक्षा की प्राप्ति नहीं हो सकती इसलिए सब लोग परस्पर प्रीति के लिए उनकी बृद्धि और रक्षा प्रयत्नपूर्वक सदा करें।

और जो यज्ञफल के उपभोग का उपदेश किया गया है, उसका प्रकाश ईश्वर ने ही किया है।

धारक पोषक तू है

(महात्मा चैतन्यमुनि)

ओ३म् हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेकऽआसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम।। (यजु. १३-१४)

स्व-प्रकाश सबको प्रकाशित करने वाले,
हे आराध्य, सूर्य चन्द्रादिक रचने वाले
तू ही सृष्टि का पोषक व धारक है।
दीन दुःखियों का तू ही उद्धारक है।।

उत्पन्न हुए जड़-चेतन का तू स्वामी है,
अनुपम, अद्भुत तू अन्तर्यामी है।
प्रलय से पूर्व भी तू संचालक है।
समस्त रचना का तू ही पालक है।।

पृथिवी आदि का धारक-पोषक तू है,
हर मौनता में प्रभु उद्घोषक तू है।
तू अधिपति है, जगत् अधिष्ठाता है।
ब्रह्माण्ड को रचता और चलाता है।।

हे सुखस्वरूप अपनी भक्ति का दान दो,
हे शुद्ध-बुद्ध विरक्ति का वरदान दो।
तेरे सान्निध्य हेतु तप का वरण करें।
'चैतन्य' नित योगाभ्यास अनुसरण करें।।

मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम

(धर्मपाल आर्य)

मार्च के महीने में राम नवमी का पर्व बड़े हर्षोल्लास के साथ मनाया गया। मन्दिरों में रामकथा का आयोजन किया गया। गलियों में रामजन्म की झाँकियाँ निकाली गयीं। रामकथावाचकों ने राम के जीवन को भगवान का जीवन सिद्ध करने में पूरी एड़ी-चोटी का जोर लगाया। राम को व्यक्ति से भगवान् सिद्ध करने में पुराणों की कपोलकल्पित कहानियों का सहारा लिया गया और यह जोर-शोर से प्रचारित किया गया कि राम की उपासना ही भगवान् की उपासना है, राम की भक्ति ही भगवान् की भक्ति है, राम की साधना ही भगवान् की साधना है, राम का ध्यान ही भगवान् का ध्यान है, राम की पूजा ही भगवान की पूजा है, राम का चिन्तन-मनन ही भगवान का चिन्तन-मनन है, राम की महिमा का बखान ही भगवान् की महिमा का बखान है, राम की अराधना ही भगवान की अराधना है तथा राम का अवतार (जन्म) ही भगवान् का अवतार (जन्म) है। इस प्रकार की भ्रामक मान्यताओं का प्रचार-प्रसार करके राम और वेदोक्त निराकार ईश्वर के मध्य अभेद सिद्ध करने की असफल कोशिश की गयी। इस प्रकार का भ्रामक प्रचार समाज के आध्यात्मिक विकास में बहुत बड़ा अवरोध पैदा कर रहा है। इतिहास साक्षी है कि जब-जब समाज भ्रामक प्रचारों का शिकार बना, तब-तब समाज को इसका भारी मूल्य चुकाना पडा है। किन्तु दुर्भाग्य देखिए कि आज भी हम न तो रामायण के असली राम को जानना चाह रहे हैं और न ही वेदानुसार असली ईश्वर को जानना चाह रहे हैं। बड़े चाव से आज भी कथावाचक भोले-भाले भक्तों को उपदेश करते हुए कहते हैं "रामे चित्तलयःसदा भवतु मे, रामस्य दासोऽस्म्यहम्" अर्थात् मेरा चित्त हमेशा राम की भक्ति में लीन रहे और मैं श्रीराम का दास हूँ। भक्ति और आध्यात्मिकता की आड़ लेकर जिस तरह से महापुरुषों को भगवान के रूप में समाज पर थोपने की मीठी-मीठी कोशिशें की जा रही हैं, उसने समाज के अन्तहीन भटकाव की नींव रखने का काम किया है। लाखों वर्ष बीतने के बाद यदि हम इतना भी नहीं जान पाये कि भगवान् कभी साकार नहीं हो सकते तथा राम भगवान् नहीं थे, तो इससे बड़ा हमारा दुर्भाग्य और क्या हो सकता है? इस मान्यता से हम ईश्वर को तो क्या राम को भी सही तरीके से नहीं समझ पायेंगे और ना ही समझ पाये हैं। ईश्वर के भक्त क्या हम राम के भी सच्चे भक्त न तो बन पाये हैं और ना ही बन पायेंगे। रामायण के दशरथ-पुत्र राम आदर्श पुत्र हैं; रामायण के दशरथ-पुत्र राम आदर्श भाई हैं, रामायण के दशरथ-पुत्र राम आदर्श शिष्य हैं; रामायण के दशरथ-पुत्र राम आदर्श गृहस्थी हैं; रामायण के दशरथ-पुत्र राम आदर्श क्षत्रिय हैं; रामायण के दशरथ-पुत्र राम आदर्श मित्र हैं; रामायण के दशरथ-पुत्र राम आदर्श राजा हैं। श्रीराम आदर्श पुत्र, आदर्श भाई, आदर्श शिष्य, आदर्श राजा, आदर्श गृहस्थी, आदर्श क्षत्रिय हैं और आदर्श मित्र हैं, लेकिन भगवान् नहीं हैं। महर्षि वाल्मीकि ने नारद मुनि से पूछा कि हे मुने!

कोन्वस्मिन्साम्प्रतं लोके गुणवान् कश्च वीर्यवान्।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढ़व्रतः।
चारित्रेण च को युक्तः सर्वभूतेषु को हितः।
विद्वान्कः कः समर्थश्च कश्चैकोप्रियदर्शनः।।

अर्थात् इस समय संसार में गुणवान् शूरवीर, धर्मज्ञ, कृतज्ञ, सत्यवादी, दृढ़प्रतिज्ञ, सदाचारी, सब प्राणियों का हित करने वाला, विद्वान् सामर्थ्यवान् और प्रियदर्शन कौन है? महर्षि वाल्मीकि के उपरोक्त प्रश्नों का उत्तर देते हुए नारद मुनि ने कहा-

"इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः।
नियतात्मा बहावीर्यो द्युतिमान्धृतिमानवशी"

अर्थात् हे महर्षे! इष्वाकु-वंश में उत्पन्न; लोगों में राम नाम विख्यात; श्रीरामचन्द्र नियतस्वभाव; अति बलवान तेजस्वी, धैर्यवान और जितेन्द्रिय हैं तथा श्रीराम प्रजा-पालक, शत्रुनाशक, प्राणिमात्र के रक्षक, अतिशोभावान्, धर्म-प्रवर्तक, वेद-वेदाङ्ग के मर्मज्ञ और धनुर्वेद (अस्त्र-शस्त्र) की विद्या में निपुण हैं। दशरथ पुत्र श्री राम उपरोक्त गुणों से ओत-प्रोत हैं लेकिन वो भगवान् नहीं हैं। जब रावण को समझाते हुए हनुमान ने कहा

"न चापि त्रिषु लोकेषु राजन्विद्यते कश्चन।
राघवस्य व्यलीकं यः कृत्वा सुखमवाप्नुयात्।"

अर्थात् हे राजन्! तीनों लोकों में ऐसा कोई भी पुरुष नहीं है, जो श्रीराम के साथ विरोध करके सुखपूर्वक रह सके। राम के उपरोक्त गुण निश्चित ही उनके उच्च व्यक्तित्व को ही व्यक्त करते हैं किन्तु श्रीराम भगवान् नहीं थे। रामायण में स्वयं श्रीराम कहते हैं कि आत्मानं मानुषं मन्ये रामं दशरथात्मजम्" अर्थात् मैं अपने को मनुष्य ही मानता हूँ और महाराजा दशरथ का पुत्र हूँ। सीता जी का अपहरण होने पर श्रीराम व्याकुल होकर कहते हैं-

"पूर्वं मया नूनमभीप्सि तानि, पापानि कर्माण्यसत्कृतानि।
तत्रायमद्यापतितो विपाको; दुःखेन दुःखं यदहं विशामि।"

अर्थात् पूर्वजन्म में निश्चय ही मैंने यथेष्ट पाप किये हैं, उन्हीं पापों का फल आज मुझे प्राप्त हो रहा है और मेरे ऊपर दुःख के ऊपर दुःख आ रहे हैं। पूरी रामायण श्रीराम के जीवन की विशद व्याख्या है, पूरी रामायण विश्व को आदर्श समाज का, आदर्श परिवार का, आदर्श राजनीतिक व्यवस्था का, पारस्परिक आदर्श सम्बन्धों का, आदर्श जीवनशैली का और आदर्श परम्पराओं का सन्देश देती है, उपदेश और आदेश देती है। मानवता का सन्देश देने वाली रामायण में, विश्व बन्धुत्व के सूत्र देने वाली रामायण में, आदर्शों के अभूतपूर्व कीर्तिमान् स्थापित करने वाली रामायण में, श्रीराम के भगवान् होने का कोई प्रमाण नहीं है। हम सबके लिए यह एक चुनौती है कि समाज के सामने श्रीराम के वास्तविक जीवन को प्रस्तुत किया जाए, जिससे समाज उनके जीवन से प्रेरणा पाकर अपने जीवन का निर्माण कर सके। काश! यह समाज उस राजनीति को अपनाए, जिसे श्रीराम ने अपनाया था, यह समाज उस ईश्वर की आराधना, साधना और उपासना करे, जिस ईश्वर की आराधना, साधना और उपासना श्रीराम ने की थी, यह समाज उस जीवन शैली का अनुकरण करे, जिस जीवनशैली का अनुकरण अपने जीवन में श्रीराम ने किया। आर्य समाज राम को मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के रूप में स्वीकार करता है। रामायण सामाजिक, आर्थिक, पारिवारिक, नैतिक, राजनीतिक, चारित्रिक, धार्मिक और आध्यात्मिक आदर्शों से ओत-प्रोत है, तभी तो महर्षि वाल्मीकि को निःसंकोच लिखना पड़ा -

"यावत्स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले।
तावद्रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति।

जब श्रीराम देवयज्ञ करने वाले हैं, जब श्रीराम गायत्री का जाप करते हैं। जब श्रीराम ब्रह्मयज्ञ करते हैं, जब श्रीराम गायत्री जप द्वारा, ब्रह्मयज्ञ (संध्या) द्वारा, अग्निहोत्र द्वारा निराकार ईश्वर का चिन्तन करते हैं, उसी आराधना, साधना और उपासना करते हैं, तो ऐसे श्रीराम ईश्वर के उपासक, चिन्तक, साधक, आराधक और भक्त तो हो सकते हैं लेकिन भगवान् नहीं हो सकते हैं। जब रावण ने मारीच के समक्ष राम की निन्दा करते हुए कहा "हे मारीच राम को उसके पिता ने क्रुद्ध होकर स्त्री सहित राजधानी से निकाल दिया है, राम बुरे चरित्र वाला है, कर्कश वाणी वाला है, तीक्ष्ण स्वभाव वाला है, मूर्ख है, लोभी और अजितेन्द्रिय है, धर्म को त्याग कर अधर्म का आचरण करने वाला है और प्राणियों का अहित करने वाला है। रावण के मुख से इस प्रकार की निन्दा सुनकर मारीच उपरोक्त आलोचना का प्रतिवाद करते हुए श्रीराम की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते हुए कहता हैं-हे राजन्! आप सही गुप्तचरों की नियुक्ति के अभाव के कारण और चञ्चल स्वभाव के कारण

(शेष पृष्ठ 18 पर)

गोडसे हत्यारा या देशभक्त

(राजेशार्य आट्टा, मो. 09991291318)

प्रिय पाठकवृन्द! प्रत्येक व्यक्ति अपनी रुचि के अनुसार संत, योद्धा, इष्ट देव, देशभक्त, नेता, वन, पर्वत, पशु-पक्षी, नर-नारी आदि के चित्र रखता है। चित्र (मूर्ति) कला प्रेरणा और आत्माभिव्यक्ति का सर्वप्रिय माध्यम है। हिन्दू लोग तो अपने इष्टदेव के भव्य मन्दिर बनाकर उनकी पूजा करते हैं। मूर्तिपूजा का आधुनिक स्वरूप और निकलकर आया है कि लोगों ने नेताओं, अभिनेताओं और क्रिकेटरों के भी मन्दिर बनाने शुरू कर दिये हैं। वर्तमान प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी ने अपने मन्दिर बनाए जाने पर नाराजगी व्यक्त कर बहुत अच्छा उदाहरण प्रस्तुत किया है, अन्यथा एक राज्य की पूर्व मुख्यमंत्री (वर्तमान में) तो अपनी प्रतिमाएँ बनवा कर और स्वयं ही अनावरण कर प्रसन्न हो रही थीं। ऐसे वातावरण में यदि कुछ लोगों ने नाथूराम गोडसे के प्रति सम्मान भावना प्रदर्शित करने के लिए उनकी प्रतिमा बनवाई हो, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। बस इतनी सी बात पर तथाकथित गाँधीवादियों (अवसरवादियों) में हड़कम्प मच गया और इसे हत्यारे का सम्मान व हत्यारे की विचारधारा का प्रचार बताकर वे गोडसे की निन्दा व प्रतिमा का विरोध करते हैं। मानो गाँधी जी के करोड़ों चित्रों (नोटों पर) पर गोडसे का एक चित्र भारी पड़ गया है।

चित्र का प्रचार करने वाले और विरोध करने वाले लोग यह न समझें कि चित्र का प्रचार होने से उस व्यक्ति की विचारधारा का भी प्रचार होगा। क्योंकि भारत में सम्भवतः सबसे अधिक चित्र महात्मा गाँधी के छपते हैं, पर उनकी विचारधारा (अहिंसा, शुद्ध शाकाहार, शराबबन्दी, गोरक्षा, हिन्दी व स्वदेशी का प्रचार) का उनके नाम पर राजनीति करने वालों द्वारा ही नित्यप्रति हनन किया जा रहा है, जबकि दूसरी तरफ इस्लाम के प्रवर्तक मोहम्मद साहब का कोई चित्र किसी मस्जिद में नहीं मिलेगा, पर उनकी विचारधारा मुस्लिमों द्वारा दिन में पाँच बार स्मरण की जाती है। उनकी विचारधारा के तथाकथित प्रचारकों (आतंकवादियों) से दुनिया सहमी हुई है।

यह भी सत्य है कि छल, कपट, दमन और अत्याचार से किसी विचार को अधिक समय तक नहीं दबाया जा सकता। देश में लगभग 67 वर्ष से जिस नाथूराम गोडसे को हत्यारा प्रचारित कर घृणा प्रकट की जाती रही, आखिर उसे एक दिन में ही तो देशभक्त बताकर उसकी प्रतिमा नहीं बनाई गई। इतने वर्षों में तो नवजात शिशु की भी तीसरी पीढ़ी जवान हो जाती है। इससे यही सिद्ध होता है कि गोडसे को देशभक्त सिद्ध करने का विचार उसको हत्यारा प्रचारित करने के साथ ही जन्म ले चुका था। गोडसे ने गाँधी को गोली मारी थी। अतः निस्सन्देह गोडसे हत्यारा था, पर दूसरा पक्ष यह कहता है कि गोडसे देशभक्त था। फिर वे कौन से कारण रहे होंगे, जो एक देशभक्त को कलंकित हत्यारे की अवस्था तक ले आये और हत्यारा भी ऐसा कि जिसके अदालती बयान को सुनकर श्रोता रो पड़े और सरकार (पं० नेहरू की) डर गई। इसी कारण वह बयान लगभग 50 वर्ष तक प्रतिबन्धित रहा।

हत्यारे गोडसे को देशभक्त प्रचारित करने वाले लोग कहते हैं- हाँ, गोडसे हत्यारा था, पर उसने देशव्यापी असहयोग आन्दोलन चलाकर अंग्रेज शासकों की नींद हराम करने वाले राष्ट्र-भक्त गाँधी को नहीं मारा, अपितु उस गाँधी को मारा था, जिसने पाकिस्तान से जैसे-तैसे जान बचाकर भारत पहुँचे और खाली पड़ी मस्जिदों में शरण लिये हुए बेघर व पीड़ित लोगों को पाकिस्तान वापस जाने के लिए कहा था।

हाँ, गोडसे हत्यारा था, पर उसने उस गाँधी को नहीं मारा, जिसकी उपस्थिति के बिना अंग्रेजों का गोलमेज सम्मेलन निष्फल हो जाए, अपितु उस गाँधी को मारा था, जिससे पूछे बिना ही नेहरू ने भारत-विभाजन स्वीकार कर हस्ताक्षर कर दिये थे और पाकिस्तान मेरी लाश पर बनेगा की घोषणा करने वाला सत्यवादी महात्मा फिर भी जीवित था। उसके विरोध में कोई अनशन नहीं किया। इसके विपरीत यह कहना शुरू कर दिया कि जब कांग्रेस के नेताओं ने देश का विभाजन और पाकिस्तान का निर्माण स्वीकार कर लिया है, तो देशवासियों को भी स्वीकार कर लेना चाहिए।

हाँ, गोडसे हत्यारा था, पर उसने भारत के बंटवारे का विरोध करने वाले देशभक्त गाँधी को नहीं मारा, अपितु पाकस्तान को 55 करोड़ रुपये दिलाने के लिए आमरण अनशन करने वाले उस गाँधी को मारा था, जिसकी नीति से परेशान हुए लोगों ने 'गाँधी जी को मरने दो' के नारे लगाये थे।

हाँ, गोडसे हत्यारा था, पर उसने भारत की स्वतंत्रता के लिए आन्दोलन चलाने वाले गाँधी को नहीं मारा, अपितु हैदराबाद के निजाम उस्मान अली के मजहबी अत्याचारों के विरुद्ध आर्य समाज व हिन्दू महासभा द्वारा किये जाने वाले सत्याग्रह (1939 ई.) से कांग्रेस को अलग रहने का सुझाव देने वाले गाँधी को मारा था।

हाँ, गोडसे हत्यारा था, पर उसने स्वतंत्रता से पूर्व गोरक्षा, हिन्दी और शराबबन्दी को स्वराज्य से भी अधिक प्राथमिकता देने वाले गाँधी को नहीं मारा, अपितु स्वतंत्रता के बाद अपने प्रिय जवाहर लाल नेहरू की सरकार पर इन्हें लागू करने के लिए एक बार भी दबाव (अनशन कर) न डालने वाले गाँधी को मारा था।

हाँ, गोडसे हत्यारा था, पर उसने हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रचारक महात्मा गाँधी को नहीं मारा, अपितु मजहबी मुस्लिमों की गुण्डागर्दी व मारकाट पर मौन साधने वाले व पाकिस्तान बनने पर वहीं जाकर रहने की इच्छा रखने वाले (इसके लिए गाँधी जी ने आजाद हिन्द के शाहनवाज खान को अपने योग्य वातावरण बनाने हेतु प्रातः 30 जनवरी को पाकिस्तान भेज भी दिया था) गाँधी को मारा था।

हाँ, गोडसे हत्यारा था, पर उसने अहिंसायुक्त सादा भोजन करने वाले व ब्रह्मचर्य पर बल देने वाले गाँधी को नहीं मारा, अपितु 'आरोग्य की कुंजी' पुस्तक में दूध को मांसाहार और अण्डों को शाकाहार मानने व अतिवृद्धावस्था में भी ब्रह्मचर्य-परीक्षण के नाम पर जवान युवतियों के साथ सोने वाले गाँधी को मारा था। (देखिये, इंडिया टुडे, 19 जून 2013)

हाँ, गोडसे हत्यारा था, पर उसने देश भर में स्वदेशी व ग्रामोद्योग का प्रचार करने वाले राजनीतिज्ञ संत को नहीं मारा, अपितु उस गाँधी को मारा, जिसकी अब कांग्रेस में कोई नहीं सुनता था; जो अब बिल्कुल नगण्य हो चुका था। वास्तव में अपने हाथों अपनी प्रतिष्ठा गंवाए व्यक्ति को मारकर गोडसे ने उसे संसार में पुजवा दिया और अपने आपको सदा के लिए इतिहास में धिक्कृत बना लिया।

महावीर, बुद्ध के देश में हिंसा को कभी उचित नहीं माना गया और स्वतंत्रता संग्राम के योद्धा व अहिंसा के पुजारी की हिंसा (हत्या) जैसे जघन्य पाप के विषय में तो यह देश सोच भी नहीं सकता था। क्या ऐसा पाप करके भी कोई देशभक्त कहला सकता है? इसके लिए हमें अतीत के उस घटनाक्रम का थोड़ा अध्ययन करना होगा।

गाँधी जी की हत्या होने में मुख्य कारण बना था- पाकिस्तान को 55 करोड़ रुपये दिलाने के लिए गाँधी जी द्वारा किया गया आमरण अनशन। हो सकता है कि गाँधी जी अध्यात्म की उस उच्च अवस्था तक पहुँच गये हों, जहाँ मित्र, शत्रु, व उदासीन की सभी सीमाएँ समाप्त हो जाती हैं; अपने-पराये की भावना नष्ट होकर केवल आत्मस्वरूप नजर आता है। इसीलिए उन्होंने राष्ट्रहित पर आक्रमण करने वाले मुस्लिम व

ईसाई से भी प्रेम किया। अंग्रेजों को मुसीबत में देखकर स्वतंत्रता के लिए चलाए जाने वाले आन्दोलन बन्द कर दिये। मुस्लिमों द्वारा हिन्दुओं पर किये गये अत्याचार व धर्मान्तरण के विरुद्ध एक शब्द भी नहीं बोला। यही नहीं, जब उनका बेटा हरिलाल (हीरालाल) इस्लाम ग्रहण कर अब्दुल्ला बन गया, तो भी उन्हें कोई आश्चर्य या दुःख नहीं हुआ। पर उनकी महानता पर सन्देह तब होता है, जब वे आर्य समाज के शुद्धि आन्दोलन (घर वापसी) का विरोध करते हैं; स्वामी दयानन्द को संकुचित विचार वाला और सत्यार्थप्रकाश को निराशाजनक पुस्तक कहते-कहते वेदों (जिन्हें उन्होंने कभी नहीं पढ़ा) की आलोचना करने लगते हैं। महर्षि दयानन्द की आलोचना में मुसलमानों द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'उन्नीसवीं सदी का महर्षि' के विरुद्ध एक शब्द भी नहीं बोलते और उसके उत्तर में प्रकाशित 'रंगीला रसूल' की जीभरकर निन्दा करते हैं। स्वामी श्रद्धानन्द के हत्यारे को अपना भाई बताते हैं।

जनरल डायर और अब्दुल रशीद जैसे हत्यारों के प्रति करुणा के भाव रखते हैं, पर वीर सावरकर, भगतसिंह, शचीन्द्रनाथ सान्याल, नेता जी सुभाष चन्द्र आदि देशभक्तों का डटकर विरोध करते हैं। फिर भी इस देश के सहनशील हिन्दू गाँधी जी को देवता मानते रहे, पर उनके धैर्य का बाँध तब टूट गया, र गाँधी जी उन्हें बार-बार 'पाकिस्तान मेरी लाश पर बनेगा' का आश्वासन देते रहे और लाखों हिन्दुओं की लाश पर पाकिस्तान बन गया, और गाँधी जी जीवित रहे। पाकिस्तान से हिन्दुओं को अपने घर-बार, खेत-बाग सब कुछ छोड़कर भागना पड़ा। लाखों लोगों को मजहबी मुस्लिमों की क्रूरता के कारण अपनी जान से हाथ धोने पड़े; उनकी माँ-बहनों की इज्जत लूटी गई; कितनों को जान की कीमत धर्म के रूप में देनी पड़ी और जो बड़ी मुश्किल से अपना धर्म व जान बचाकर भारत पहुँचे, उन्हें गाँधी जी पाकिस्तान वापस जाने के लिए कहने लगे और पाकिस्तान जाने वाले मुस्लिमों को यहीं रहने की प्रार्थना की। यही नहीं, जो चले गये थे, उन्हें भी भारत में वापस आने के लिए कहने लगे। तब पीड़ित हिन्दुओं ने पूछा- बापू, जब यही करना था, तो देश बँटवाया क्यों? विभाजन के विरोध में अनशन क्यों नहीं किया? सत्य के पुजारी को तो अपनी जान दे देनी चाहिए थी।

देश-विभाजन के घाव की पीड़ा को देशवासी बड़ी मुश्किल से सहन कर रहे थे कि गाँधी जी ने उस घाव पर नमक छिड़क दिया। जिस पाकिस्तान से उन्हें यह विनाश मिला था; जो पाकिस्तान उनके देश (कश्मीर) पर आक्रमण कर रहा था, फिर उसी पाकिस्तान को ऐसी परिस्थिति में 55 करोड़ रुपये देने के लिए गाँधी जी ने भारत सरकार पर दबाव डाला। नेहरू ने भी मना करते हुए कहा था कि भारत की उससे कहीं अधिक (275 करोड़) रकम पाकिस्तान के जिम्मे निकलती है। अतः नकद अदायगी का कोई प्रश्न नहीं उठता।

पर गाँधी जी ने किसी की नहीं सुनी और 13 जनवरी 1948 को अनशन शुरु कर दिया। गाँधीजी का यह कदम स्पष्टतः भारत के लिए बहुत घातक था और किसी भी देशभक्त की दृष्टि में उचित नहीं था। देश के सभी नेता मना कर रहे थे पर गाँधी के प्राण बचाने के लिए 18 जनवरी को यह रुपया पाकिस्तान को देना पड़ा। गाँधी के इस व्यवहार से भारत के बच्चे से लेकर बड़े नेता तक में गाँधी के प्रति अनास्था हो गई। बड़े से बड़े कांग्रेसी नेता भी यह कहने लगे थे कि अब तो गाँधी जी संन्यास लेकर हिमालय की किसी गुहा में जा बैठें, तो अच्छा हो। साधारण हिन्दू जनता कहने लगी थी कि अब तो भगवान गाँधी को अपने पास बुला लें, तो अच्छा हो।

भारत के कानों में तो अभी अंग्रेजों के अन्याय व अत्याचार का विरोध करने वाले क्रांतिकारियों के गोले-गोलियों की आवाज गूँज रही थी। सम्भवतः उन्हीं में से किसी को लगा हो कि गाँधी जी भारत के साथ अन्याय कर रहे हैं और इस अन्याय का विरोध होना चाहिए। इसीलिए 20 जनवरी को मदनलाल पाहवा नामक

युवक ने गाँधी जी की प्रार्थना सभा (दिल्ली) में बम फेंक दिया। जिससे पास की दीवार को छोड़कर किसी का कोई नुकसान नहीं हुआ। मदनलाल को पकड़ लिया गया, पर गाँधी जी की सुरक्षा को लेकर सरकार ने उपेक्षा ही दिखाई, अन्यथा 30 जनवरी की घटना न घटती।

प्रसंगवश एक घटना का उल्लेख करना आवश्यक लगता है- देश स्वतंत्र करने से पूर्व अंग्रेजों ने इसे भारत-पाक में तोड़ दिया और सभी रियासतों को उनकी इच्छा पर किसी भी देश में शामिल होने के लिए छोड़ दिया। किसी-किसी की तो स्वतंत्र रहने के लिए पीठ भी ठोंक दी। 5 जुलाई से 15 अगस्त 1947 तक सरदार पटेल ने लगभग 562 रियासतों को भारत में मिला लिया। केवल तीन मुख्य रियासतें रह गई थीं- जूनागढ़, कश्मीर और हैदराबाद। जूनागढ़ का नवाब पाकिस्तान भाग गया। अतः 9 नवम्बर को जूनागढ़ भी भारत में मिल गया। कश्मीर 26 अक्तूबर को भारत में मिल गया था। अब केवल हैदराबाद का निजाम पाकिस्तान की सहायता से स्वतंत्र रहने पर अड़ा हुआ था और हिन्दू जनता पर अत्याचार कर रहा था। (1938-39 ई० में भी उसके अत्याचारों के विरुद्ध आर्यों को सत्याग्रह करना पड़ा था। हिन्दू महासभा (पूना) की ओर से वीर सावरकर ने सत्याग्रहियों का सबसे बड़ा जत्था नाथूराम गोडसे के नेतृत्व में हैदराबाद भेजा था)

गाँधी जी सब कुछ जानते हुए भी निजाम के विरुद्ध कुछ नहीं बोल रहे थे। भारत सरकार ने अक्तूबर 1947 में हैदराबाद से विशेष समझौता कर उसे अपनी स्थिति स्पष्ट करने के लिए एक वर्ष का समय दिया था। निजाम पाकिस्तान से हथियार मंगवाकर रजाकारों की मदद से मनमानी करता रहा। जनवरी 1948 के अंतिम सप्ताह में हैदराबाद का प्रधानमंत्री लायक अली गाँधी जी से मिला। गाँधी जी के विचित्र व्यवहार से हिन्दुओं को लगा कि गाँधी जी ने जैसे 16 अगस्त 1946 को बंगाल में हिन्दुओं का नरसंहार करवाने वाले सुहरावर्दी को गले लगाया था, उसी प्रकार अत्याचारी रजाकारों के नेता कासिम रिजवी को भी अपना दत्तक पुत्र समझकर व्यवहार करेंगे। (यह सन्देह बिल्कुल निराधार भी नहीं था, क्योंकि गाँधी जी के जीवित रहते शक्तिशाली भारत सरकार हैदराबाद के विरुद्ध सैनिक बल का प्रयोग नहीं कर सकती थी। निजाम को बहुत समझाने के बाद 13 सितम्बर 1948 को सरदार पटेल ने मेजर जनरल चौधरी के नेतृत्व में भारतीय सेना हैदराबाद भेजकर 5 दिन में निजाम उस्मान अली से हथियार डलवाए थे।)

55 करोड़ की घटना के साथ सम्भवतः हैदराबाद के प्रधानमंत्री से मिलने वाली घटना ने भी हत्यारे को 30 जनवरी वाली घटना के लिए प्रेरित किया हो। 30 जनवरी को महाराष्ट्र के ब्राह्मण युवक नाथूराम गोडसे ने प्रार्थना सभा (दिल्ली) में पहुँचकर गाँधी जी को तीन गोलियाँ मार दीं। सभी सहम गये। उस अफरा-तफरी में हत्यारा भाग सकता था, पर वह भागा नहीं, बल्कि एक के बाद एक गोलियाँ चलाने के उपरान्त उसने अपना पिस्तौल वाला हाथ ऊपर उठाया और पुलिस-पुलिस चिल्लाने लगा। कोई आधा मिनट बीतने पर भी कोई उसके पास फटकने का साहस नहीं कर पा रहा था। उसने स्वेच्छा से पुलिस को आत्मसमर्पण किया, ताकि भगतसिंह की तरह न्यायालय में अपने कृत्य का औचित्य सिद्ध कर सके।

गाँधी जी की हत्या का समाचार फैलते ही देश में भूचाल-सा आ गया। हत्यारे को पूरे देश से बद्दुआए मिलने लगीं। राष्ट्रीय स्वंय सेवक संघ से सम्बन्ध बताकर नेहरू सरकार ने 1 फरवरी को संघ के सरचालक गुरु गोलवलकर को बन्दी बना लिया व 4 फरवरी को संघ पर प्रतिवन्ध लगा दिया। संघ से जुड़े व्यक्ति को नौकरी से हटाने का आदेश दे दिये। हिन्दू महासभा के हजारों सदस्य जेल में डाल दिये गये।

हत्यारे नाथूराम गोडसे के अतिरिक्त उनके भाई गोपाल गोडसे, मित्र नारायण आपटे, विष्णु करकरे, दिगम्बर बागड़े व मदनलाल पाहवा (बम कांड) आदि को भी इस हत्याकांड के आरोप में बन्दी बनाया गया। 'हत्यारे ने गाँधी जी की हत्या वीर सावरकर की प्रेरणा से की है'

ऐसी कल्पना कर गुण्डों ने मुम्बई में तथा देश के अनेक भागों में हिंसा का नंगा नाच खेला। रोग की अवस्था में ही 5 फरवरी को वीर सावरकर को बन्दी बनाकर जेल (लाल किला) में डाल दिया गया। चितपावन ब्राह्मणों के घरों में गुण्डों ने आग लगाई, उन्हें लूटा गया। शिवाजी पार्क मे नारायण सावरकर को इतना घायल किया कि निरन्तर अस्वस्थ रहकर वे 19 अक्तूबर 1949 को स्वर्ग सिधार गये।

गाँधी हत्याकांड में कोई प्रमाण सिद्ध न होने पर गुरु गोलवरकर को 6 अगस्त को रिहा कर दिया गया, पर 12 नवम्बर को पुनः गिरफ्तार कर लिया। संघ के लगभग 50 हजार स्वयं सेवकों ने उनकी रिहाई के लिए जेल भरीं और 13 जुलाई 1949 को वे मुक्त कर दिये गये।

मुकदमे की सुनवाई मई 1948 के अंत में हुई। 20 मई को ही नाथूराम गोडसे, आपटे, मदन पाहवा, गोपाल गोडसे, विष्णु करकरे, डॉ० दत्तात्रेय परचुरे, शंकर किस्तैया, दिगम्बर बागड़े आदि को जेलों से लाकर लाल किले में बन्द कर दिया गया। बागड़े पुलिस के बहकावे में आ गया और उसने बयान दिया कि नाथूराम गोडसे और आपटे ने गाँधी जी की हत्या के लिए सावरकर से आशीर्वाद लिया था। नेहरू सरकार सावरकर की छवि बिगाड़ने के लिए एड़ी-चोटी का जोर लगा रही थी। अतः बागड़े का बयान सब अखबारों में छप गया।

8 नवम्बर को गोडसे और आपटे ने न्यायालय में अपना बयान देते हुए कहा कि इस हत्या से सावरकर जी का कोई सम्बन्ध नहीं है। हिन्दुओं की दुर्दशा करने तथा पाकिस्तान को पचपन करोड़ रुपया देने के गाँधी जी प्रयासों से दुःखी होकर यह कदम उठाना पड़ा। गोडसे ने साफ-साफ कहा कि वह कोई अन्धविश्वासी व्यक्ति नहीं है, जो हत्या से पहले किसी का आशीर्वाद मागने जाता। उसने अपने पूरे होशो-हवास में व्यक्तिगत रूप से गाँधी जी की हत्या का फैसला लिया और हत्या की।" यह ऐतिहासिक बयान सरकार ने जब्त कर लिया, जिसमें गोडसे ने 150 तथ्य अपने पक्ष में दिये थे।

20 नवम्बर 1948 को वीर सावरकर ने अदालत में अपना 52 पृष्ठ का बयान प्रस्तुत किया, जिसमें कहा गया था कि गाँधी जी की हत्या के मामले में उन्हें जान-बूझकर फँसाया गया। (डॉ० अम्बेडकर ने भी वीर सावरकर के वकील भोपतकर को यही कहा था) "यह ठीक है कि वे गाँधी जी के विचारों से कभी सहमत नहीं रहे और भविष्य में भी कभी सहमत नहीं होंगे, परन्तु इसका अर्थ यह तो नहीं कि वे हत्या जैसे जघन्य कर्म पर उतर आते।" मोरार जी देसाई भी एक गवाह थे, जिनके कथन की सावरकर ने अपने वक्तव्य में बहुत खिल्ली उड़ाई।

10 फरवरी 1949 को हत्याकांड के विशेष न्यायाधीश जस्टिस आत्माचरण ने निर्णय दिया- "सावरकर ने देश के लिए बहुत कुछ भुगता। इस बात की जाँच होनी चाहिए कि ऐसे महान नेता का नाम इस हत्याकांड में क्यों घसीटा गया?"

वीर सावरकर ससम्मान मुक्त किये गये। नाथूराम गोडसे और आपटे को फाँसी तथा अन्य अभियुक्तों को आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई। उच्च न्यायालय में अपील करने पर डॉ० परचुरे और शंकर किस्तैया दोषमुक्त हो गये। उच्च न्यायालय ने आपटे की सजा में नरमी बरतने के लिए सरकार से अनुशंसा की, पर सरकार ने स्वीकार नहीं की। 22 जून को विष्णु करकरे, मदनलाल पाहवा और गोपाल गोडसे को आजीवन कारावास तथा नाथूराम गोडसे और नारायण आपटे को फाँसी का दण्ड सुनाया गया।

15 नवम्बर 1949 को अम्बाला सेंट्रल जेल में सुबह 8 बजे गोडसे व आपटे ने अपने माता-पिता के चित्रों की पूजा की, क्योंकि सरकार ने गोडसे को मरणासन्न माता-पिता के अंतिम दर्शन करने की अनुमति नहीं दी थी। इसके बाद वे दोनों हाथों में गीता और भगवा ध्वज लेकर व अखण्ड भारत का मानचित्र छाती से लगाए 'वन्दे मातरम्' और अखण्ड भारत अमर रहे' के

शेष पृष्ठ 23 पर

चन्द्र वसु क्यों है?

(उत्तरा नैरुरकर, बंगलौर मो. 09845050310)

पिछले सप्ताह हमने ये समझा कि सूर्य वसु - जिस पर वास किया जाए - कैसे है? परन्तु वसुओं के अन्तर्गत चन्द्र को भी गिना गया है और महर्षि दयानन्द ने भी कहा, "जब पृथिवी के समान सूर्य, चन्द्र और नक्षत्र वसु हैं, पश्चात् उनमें इसी प्रकार प्रजा के होने में क्या सन्देह?" सो, इस बार हम देखते हैं कि चन्द्र पर किस प्रकार की प्रजा होने के प्रमाण मिलते हैं।

यह तो हम जानते ही हैं कि हमारे चन्द्र पर जैविक सृष्टि होने की सम्भावना शून्य पाई गई है। अन्य ग्रहों के चन्द्रों पर भी आशा न के बराबर ही है। तो पुनः यहाँ मनुष्य प्रजा मानना तो अज्ञानता है।

हमारे शब्द प्रमाणों में इस विषय में कुछ कथन प्राप्त होते हैं। छान्दोग्योपनिषद् में इसका सम्भवतः सबसे स्पष्ट विवरण मिलता है -

अथ ये इमे ग्राम इष्टापूर्ते दत्तमित्युपासते ते धूममभिसम्भवन्ति धूमाद्रात्रिं रात्रेरपरपक्षमपरपक्षाद्यान् षड् दक्षिणैति मासाँस्तानैते संवत्सरमभिप्राप्नुवन्ति।।

मासेभ्यः पितृल पितृलोकादाकाशमाकाशाच्चन्द्रमसमेष सोमो राजा तद्देवानामन्नं तं देवा भक्षयन्ति। तस्मिन् यावत्सम्पातमुषित्वाथैतमेवाध्वानं पुनर्निवर्तन्ते।...।।

छान्दोग्य० 5/3-5।।

अर्थात् जो मनुष्य, ग्राम में (संन्यास न लेते हुए), (इष्ट-) यज्ञ, (आपूर्त -) परोपकार (बावड़ी, विद्यालय, आदि का बनवाना), और (दत्तम् -) दान श्रद्धापूर्वक करते हैं, वे मरणोपरान्त 'धूम' जैसी दशा को प्राप्त होते हैं, जिसमें कुछ प्रकाश और कुछ अप्रकाश होता है। तदनन्तर वे रात्रि को प्राप्त होते हैं, रात्रि से कृष्णपक्ष को और कृष्णपक्ष से दक्षिणायन को। परन्तु वे संवत्सर (अधिक प्रकाश) को प्राप्त नहीं होते। दक्षिणायन से वे पितृलोक पहुँचते हैं, पितृलोक से आकाश को, आकाश से चन्द्रमा को। यह सोम राजा (चन्द्रमा) देवों का अन्न होता है- उसे देव खाते हैं (वहाँ भोग करते हैं)। वहाँ वे तब तक वास करते हैं, जब तक उनके (सम्पात) कर्मों का क्षय नहीं हो जाता। उसके बाद वे उसी मार्ग (जिससे वे गए थे) से वापस लौट आते हैं (पृथिवी लोक पर)।

पहले, हम देखते हैं कि यहाँ नीच कर्म करने वाले लोगों की बात नहीं हो रही है, अपितु अत्यन्त धार्मिक सज्जनों की बात हो रही है, जो यज्ञ, परोपकार, आदि करते हैं। धार्मिक होने पर भी, वे संसार से उपरत नहीं हुए हैं, और उन्हें ब्रह्म की प्राप्ति नहीं हुई है। तथापि उन्हें देव पुकारा गया है। चन्द्र उनका भोग-स्थान बताया गया है। इससे प्रतीत होता है कि ये दिव्यात्माएँ अपने पुण्य को चन्द्र पर भोगती हैं। वहाँ वे सूक्ष्म शरीर से आवेष्टित रहती हैं, उनका स्थूल शरीर नहीं होता। इसलिए वे वहाँ केवल आनन्द का भोग करती हैं (स्थूल शरीर ही हमारे कष्टों का मुख्य कारण है)। पुण्यों का क्षय हो जाने पर, वे पुनः पृथिवी लोक पर लौट आती हैं, जहाँ सुख और दुःख- दोनों ही पाए जाते हैं। इस प्रकार हम ये समझ सकते हैं कि चाँद को यहाँ स्वर्ग बताया जा रहा है। 'स्वर्गकामो यजेत्' इसी स्वर्ग को कह रहा है।

मैं जानती हूँ कि महर्षि ने कहा है कि स्वर्ग जैसा कोई स्थान-विशेष नहीं है, और स्वर्ग-नर्क - ये दोनों सुख-दुःख रूपी अवस्थाएँ पृथिवी पर ही पाई जाती हैं। परन्तु चाँद के स्वर्ग होने में अन्य भी प्रमाण पाए जाते हैं। प्रश्नोपनिषद् कहता है-

संवत्सरो वै प्रजापतिस्तस्यायने दक्षिणं चोत्तरं च।

तद्ये ह वै तदिष्टापूर्ते कृतमित्युपासते ते चान्द्रमसमेव लोकमभिजयन्ते। त एव पुनरावर्तन्ते तस्मादेते ऋषयः प्रजाकामा दक्षिणं प्रतिपद्यन्ते। एष ह वै रयिर्यः पितृयाणः।। प्रश्न० 1/9।।

अर्थात् वस्तुतः संवत्सर (= वर्ष) प्रजापति है (= प्रजाओं का अधिपति है, उनकी आयुओं का निर्धारण करता है)। उस प्रजापति-रूप संवत्सर के दो अयन (= मार्ग) होते हैं- एक दक्षिण और दूसरा उत्तर। निश्चय से, जो इष्ट (= यज्ञ) और आपूर्त (= परोपकारी) कृत्यों को कर्तव्य मानकर उनका अनुष्ठान करते हैं, वे चन्द्र लोक को ही जीतते हैं (= वहीं तक पहुँच पाते हैं)। और वे वहीं से पुनः वापस आ जाते हैं। इसलिए वे प्रजा (= भौतिक सुखों) की कामना करने वाले ऋषि दक्षिण मार्ग से जाते हैं। निश्चय से, यह मार्ग जो पितृयाण है, वही 'रयि' है, अर्थात् धन, भोगों का मार्ग है। (जिन्होंने मेरा पिछले महीने का लेख पढ़ा था, वे इससे अगला पदच्छेद भी पढ़ सकते हैं, जहाँ पुनः मुक्तात्माओं के आदित्य लोक प्राप्त करने की बात है, जहाँ से वे वापस नहीं लौटते अर्थात् मुक्त हो जाते हैं।)

पुनः हम यहाँ देखते है कि केवल धार्मिक 'ऋपियों' का इस पदच्छेद में कथन है। ऐसा प्रतीत होता है कि सूक्ष्म शरीर वाली आत्माओं के लिए चन्द्रलोकों में कुछ सुख-भोग के साधन होते हैं, जिसे भोग लेने पर, उनके विशेष पुण्यकर्मों (इष्टापूर्त कृत्य) का फल मिल जाने पर, वे वापस पृथिवी लोक आ जाते हैं

मुण्डकोपनिषद् में भी इसी प्रकार का संकेत प्राप्त होता है -

इष्टापूर्तं मन्यमाना वरिष्ठं
नान्यच्छ्रेयो वेदयन्ते प्रमूढाः।
नाकस्य पृष्ठे ते सुकृतेऽनुभूत्वे-
मं लोकं हीनतरं वा विशन्ति।। मुण्डक० 1/10।।

अर्थात् जो विशेष रूप से मूढ़ हैं, वे इष्ट और आपूर्त को ही सबसे श्रेष्ठ मानते हुए, उनके भिन्न कुछ और श्रेय है ही नहीं, ऐसा समझते हैं। (नाकं = न कम् अकं, तन्नास्ति यत्र तन्नाकम्) दुःख-शून्य स्वर्ग की ऊँचाई पर, अपने सुकृतों से (अर्जित पुण्य का सुख) अनुभव करके इस लोक (पृथिवी लोक) या फिर इससे भी हीनतर लोक में प्रवेश करते हैं। यहाँ 'नाक' चन्द्र लोक को संकेतित कर रहा है।

एक विपय यह भी ध्यान देने योग्य है कि, जिस प्रकार सूर्य पर सर्वदा प्रकाश होता है, वैसे ही पृथिवी के चन्द्र के उजले भाग पर एक पक्ष के लिए प्रकाश रहता है। पृथिवी के आधे दिन के प्रकाश से ये अवधि कहीं अधिक है। इस प्रकार प्रकाश और ज्ञान, प्रकाश व सुख का कुछ गहरा सम्बन्ध ज्ञात होता है, जो कि केवल आलंकारिक नहीं है। तपस्वी मुनियों के मुख पर जो तेज होता है, उन्हें अपने अन्दर जो प्रकाश की अनुभूति होती है- ये भी इसी बात के परिचायक हैं।

यहाँ यह संशय हो सकता है कि उपनिषदों की भाषा प्रायः आलंकारिक होती है। सो, क्या यह चन्द्र लोक किसी और अवस्था की बात कर रहा है, और भौतिक चाँद की नहीं? तो देखिए एक वाक्य साङ्ख्य-दर्शन से-

चन्द्रादिलोकेऽप्यावृत्तिर्निमित्तसद्भावात्।। 6/56।।

अर्थात् चन्द्रादि लोकों से भी (पृथिवी आदि से ही नहीं); (आवृत्ति) लौटना होता है, निमित्त (अविद्या) के सद्भाव होने के कारण। इससे स्पष्ट है कि, कपिल मुनि के मत में भी, चन्द्रादि लोक पर वास को पृथिवी से श्रेष्ठतर माना गया है परन्तु मोक्ष से हीनतर।

पिछले मास हमने देखा था कि, वैदिक प्रमाण में, चन्द्रलोक का स्पष्ट वर्णन न था। सूर्य के प्रकाश से प्रकाश देने के कारण, सम्भव है कि चन्द्र भी द्युलोक में गिना गया हो। मान्य विद्वान् इस पर अपनी टिप्पणी

शेष पृष्ठ 15 पर

।। ओ३म्।।

एक पत्र दुबई से

(आचार्य ज्ञानेश्वरार्य)

31.03.2015

समादरणीय श्रीयुत सम्पादक जी !

सादर नमस्ते।

ईश्वरकृपयात्र कुशलं तत्रापि भवतु कामये।

आर्य सज्जनों के आमंत्रण पर 23 मार्च को दुबई पहुँचा। यहाँ पर दर्शन अध्यापन, ध्यान, शंका समाधान तथा प्रेरणा देता हूँ। अवसर प्राप्त करके अन्य देशों में भ्रमणार्थ चला जाता हूँ। यह मेरी 21वीं प्रचार यात्रा है, खाड़ी में तीसरी बार आया हूँ।

विदेशों में सार्वजनिक रूप से प्रतिदिन यज्ञ, सत्संग, प्रवचन के कार्यक्रम नहीं होते हैं। शनि या रवि या विशेष उत्सव में ही बड़े कार्यक्रम होते हैं। श्रोता 50 से 100-150 तक भी हो जाते हैं, पारिवारिक सत्संग में 10-20-30-50 तक ही रहते हैं। भाषा का माध्यम हिन्दी ही मुख्य रूप से होता है, गौण रूप से अंग्रेजी का भी प्रयोग करता हूँ। प्रवचनों में अधिकांश भारतीय ही होते हैं, कभी विशेष कार्यक्रमों में विदेशी लोग भी भाग लेते हैं। जब समाज या परिवारों में व्यवस्था हो जाती है, तो भोजन वहाँ पर अन्यथा होटल या स्वयंपाकी बनकर भोजन करता हूँ।

विगत 15 वर्षों से अनेक देशों में प्रचार यात्रा करते हुए यह पाया कि किसी देश में समाज हो या नहीं जहाँ आर्य हैं, वहां विद्वान् प्रचारकों की आवश्यकता है, अमेरिका हो या योरोप, अफ्रीका हो या पूर्व के देश। दर्जनों समाजों वा नगरों में सैकड़ों की संख्या में आर्य (वैदिक धर्मी) विचारधारा वाले लोग रहते हैं, चाहे वे धन्धा करें या नौकरी, उनको प्रेरित करके एक स्थान पर सप्ताह में एकत्रित किया जाये तो थोड़े से ही काल में समाज की स्थापना हो सकती है। उसके माध्यम से अनेक प्रकार के धार्मिक कार्यक्रम बनाकर वैदिक धर्म का प्रचार-प्रसार किया जा सकता है।

विद्वानों की माँग भी बहुत है और उपलब्धि भी बहुत है, वस कमी है तो इस बात की कि कोई माध्यम हो जो इस कार्य को सम्पन्न कर सके। भारत में अनुभवी, प्रौढ़ प्रचारकों की एक संस्था बनाकर जिसमें देश तथा विदेश दोनों के अधिकारी महानुभाव हों, प्रचारकों का चयन, नीति निर्धारण, दक्षिणा, मार्गव्यय, साधन-सुविधा, अवकाश, प्रचार के विषय, समय निश्चय, भोजन, आवास, वाहन, संदेश संचार आदि महतवपूर्ण विषयों से सम्बन्धित लिखित विवरण बनायें। यदि आवश्यकता हो तो विद्वानों का कुछ काल के लिए शिविर (मार्गदर्शन) भी लगाया जा सकता है, उनमें से योग्य प्रचारकों का चयन करके उनसे लिखित रूप में अनुबन्ध कराकर प्रचारार्थ विदेश भेजा जाये।

उचित तो यही है कि अधिकारी केन्द्रीय सत्ता के अन्तर्गत ऐसी संस्था बने, यदि ऐसा किन्हीं कारणों से संभव न हो तो व्यक्तिगत रूप से विदेशी समाजों के अधिकारी महानुभावों का विश्वास सहयोग निर्देश प्रापत करके भी ऐसी संस्था बनायी जा सकती है। विदेश प्रचारार्थ जाने वाले विद्वानों को विदेश में किन किन बातों का विशेष

ध्यान रखना आवश्यक है, वे बातें अवश्य ही बता देनी चाहिए, जिससे भविष्य में कोई अनिष्ट, अभ्रद, अव्यवहारिक, अशिष्ट घटना न घटे। अनुबन्ध से विद्वानों को यह प्रतीति न हो कि उनको बन्धक बनाया जा रहा है और ऐसी-इतनी स्वतंत्रता भी न दी जाये कि वे स्वेच्छाचारी बन जायें।

- ऐसी माध्यम बनने वाली संस्था न होने पर योग्य विद्वान् स्वयं भी विदेश प्रचारार्थ जाने का साहस कर सकते हैं। विदेश में रहने वाले सामाजिक अधिकारियों के मन में प्रायः ऐसी आशंकाएँ बनी होती है कि कैसा स्वभाव है, कैसा बोलते हैं, क्या सुविधाएँ चाहिए और क्या अपेक्षाएँ है? आदि-आदि। विदेश जाने वाले विद्वानों को चाहिए कि वे दान-दक्षिणा, साधन-सुविधा, यात्रा व्यय-वाहन-भ्रमण आदि की याचना न करें, न प्रसंग बनाकर चर्चा करे। अपने व्यवहारों को स्पष्ट, सरल, विनम्र गंभीर वन कर करे। प्रवचन में विवादास्पद अप्रासंगिक, अनुपयुक्त, अनावश्यक विषयों को न उठावें। कभी, कहीं, किसी विपय में अवैदिकता, अप्रामाणिकता प्रतीत हो तो तत्काल खण्डन, विरोध परिवर्धन, परिवर्तन न करें। कर्मकाण्ड में कुछ लचीलापन बना ले। पश्चात् अवसर मिलने पर लोगों को समझा कर सुधार किया जा सकता है।

अपने विषय में, विदेश स्थित अधिकारियों को विश्वास दिलाने हेतु भारत के प्रतिष्ठित विद्वानों-अधिकारियों की संस्तुति भी प्राप्त की जा सकती है। यदि यात्रा व्यय प्रारंभ में स्वयं ही (किसी से सहयोग प्राप्त करके) वहन किया जाये तो अति लाभकारी होगा। एक बार विदेश जाने पर प्रवचन, व्यवहार, विद्वता, त्याग, तपस्या, निष्कामता का प्रभाव पड़ेगा तो स्वयं लोग हर प्रकार का सहयोग करेंगे सुविधाएँ प्रदान करेंगे, बुलायेंगे।

- हे प्रभो! देश और विदेश में स्थित वैदिक धर्म के कर्णधारों, अधिकारियों, विद्वानों के हृदयों में ऐसी प्रेरणा, उत्साह, आशा के भाव भरो कि वे संगठित होकर, नीति निर्धारण करके, विद्वानों का निर्माण, विदेश में प्रेषण करके, सहजता से वैदिक धर्म के शाश्वत सिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार विश्व भर में करा दें और आर्यों का अखण्डित चक्रवर्ती साम्राज्य पुनः स्थापित हो जाये, इसी हार्दिक कामना-आशा विश्वास के साथ ज्ञानेश्वरार्यः

पृष्ठ 13 का शेष

अवश्य देने की कृपा करें।

पिछले मास के लेख से कुछ लोग उद्विग्न हो गए, यह जानकर कि मैंने अपनी कल्पना से कुछ मनगढ़न्त बातें लिख दी हैं। इसका कारण यही है कि अभी तक किसी विद्वान् ने इस प्रकार से इस विषय का विश्लेपण नहीं किया है। परन्तु, यदि मेरा लेख ठीक से पढ़ा जाए तो ज्ञात होगा कि मैंने केवल शब्द-प्रमाण दिए हैं, अपने मन से कुछ भी नहीं लिखा है। यदि पाठक चाहें, तो मेरे दिए मन्त्रों आदि को स्वयं पढ़ लें। मैंने तो केवल कई स्थलों से उनको इकड्डा करके दिखाया है कि यह एक प्राचीन धारणा चली आ रही है। हमारे ऋषि क्रान्तदर्शी हुआ करते थे। वे ज्ञानचक्षु से वह देख लेते थे, जो शारीरिक चक्षु से देख पाना असम्भव है। इसीलिए उनके शब्द को प्रमाण माना गया है, क्योंकि अन्य किसी प्रकार से वह साधारण मनुष्यों को उपलब्ध नहीं है। दूसरे, वेदों और उपनिषदों के केवल कुछ भाग को ग्रहण कर लेना, जो हमारे बुद्धि में समा जाएं, और अन्य सब को नकार देना, यह दुराग्रह ही माना जायेगा। वाकी, सत्य और झूठ का अन्तिम निर्णय आप स्वयं करें।

□□

यजुर्वेद में स्वर्ग

(महात्मा चैतन्यमुनि)

व्याकरण शास्त्रानुसार 'स्वर्ग' शब्द 'स्वर्' उपपद में 'गम्लृ-गतौ' धातु से 'ड प्रकरणेऽन्येष्वपि दृश्यते। अ. 3-248 वार्तिकसूत्र से 'ड प्रत्यय के योग से बनता है। गति के ज्ञान-गमन-प्राप्ति तीन अर्थ होते हैं। 'स्व' सुख का अनुभव होना, सुख में प्रविष्ट होना, सुख की प्राप्ति होना ही स्वर्ग अर्थात् सुख है। इसी प्रकार 'स्वर्गलोक' का अर्थ है। 'लोकृ दर्शने' धातु से लोक शब्द बनता है। जिसका अर्थ 'स्थान' है। जहाँ स्वर्ग प्राप्त होता है-सुख प्राप्त होता है, वह स्वर्गलोक है। स्थान से तात्पर्य यहाँ किसी विशेष स्थान से नहीं है, बल्कि जिस अवस्था में हमें सुख प्राप्त हो, वही स्वर्ग है। महर्षि दयानन्द अपने कालजयी ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश के 'स्वमन्तव्यामन्तव्य-प्रकाश' में लिखते हैं-'स्वर्ग'-नाम सुख-विशेष भोग और उसकी सामग्री की प्राप्ति का है। 'नरक'-जो दुःख विशेष भोग और सामग्री को प्राप्त होना है। 'सत्यार्थप्रकाश के नौवें समुल्लास में वे मुक्ति के प्रसंग में स्वर्ग-नरक की व्याख्या करते हुए लिखते हैं- 'मुक्ति में जीवात्मा निर्मल होने से पूर्ण ज्ञानी होकर उसको सब सन्निहित पदार्थों का भान अर्थात् यथावत् होता है। यही सुखविशेष 'स्वर्ग' और विषयतृष्णा में फंसकर दुःखविशेष भोग करना 'नरक' कहाता है। 'स्वः' सुख का नाम है, 'स्वः सुखं गच्छति यस्मिन् स स्वर्गः, अतो विपरीती दुःखभोगो (यस्मिन् स) नरक इति' जो साँसारिक सुख है, वह 'सामान्य स्वर्ग' और जो परमेश्वर प्राप्ति से आनन्द है, वही 'विशेष स्वर्ग' कहाता है। 'यहाँ पर महर्षि जी ने स्वर्ग को भी दो भागों में बाँटकर बहुत ही सुन्दर एवं सार्थक विचार प्रस्तुत करके संसार को उपकृत किया है।

लोक शब्द का अर्थ है 'जो देखा जाए, जो जाना जाए'। इसके भाव हम इस प्रकार से समझ सकते हैं-स्थान, अवस्था या काल, सुख-विशेष की अवस्था, प्रकाश की अवस्था आदि। लोक शब्द का व्यवहार बहुत से प्रसंगों में किया जाता है जैसे-कन्या पितृलोक को छोड़कर पतिलोक को जा रही है आदि। जैसे स्वर्ग-लोक कोई स्थान विशेष नहीं है, उसी प्रकार नरक भी कोई स्थान विशेष नहीं है। स्वर्ग का अर्थ सुख है इसलिए नरक का अर्थ दुःख हुआ क्योंकि नरक शब्द स्वर्ग का विपरार्थक है। रामायण के सुप्रसिद्ध टीकाकार गोविन्दराज ने नरक का अर्थ इस प्रकार किया है-अत्र नरकः शब्देन दुःखं लक्ष्यते- यहाँ नरक शब्द का अर्थ दुःख है। महर्षि यास्कजी ने निरुक्त में लिखा है-नरकंन्यरकं नीचैर्गमनम् इति वा। (1-3-11) अर्थात् दुःख, अधःपतन या अवनति का नाम नरक है। नरक का सीधा सा अर्थ है- नीचे जाना, पतन का लोक, सुख का अभाव।

स्वर्ग तथा मुक्ति के लिए वेदों में अन्य शब्द भी आए हैं- 'सुकृतस्य लोके' (ऋ.10-85-24) अर्थात् पुण्यकर्मों के लोक में। 'अमृतस्य लोके' (ऋ.10-85-20) अर्थात् अमर लोक में प्रविष्ट हों निरुक्त में (2-14) भी स्वर्ग के पर्यायवाची नाम, द्यौ तथा सुकृतस्य-लोक दिए हैं। मीमांसा में (6-1-1) 'स्वर्ग' सुख विशेष को माना गया है। स्वर्ग शब्द से स्थान-विशेष व वस्तु विशेष का ग्रहण मीमांसा को स्वीकार्य नहीं है। वेद के अनेक मन्त्रों में द्यौलोक, ब्रह्मलोक, स्वर्गलोक, मोक्ष तथा सुकृतलोक आदि की चर्चा की गई है। ....बृहस्पतेरुत्तमं नाकं रुहेयम्, इन्द्रस्योत्तमं नाकं रुहेयम्.:. (यजु. 9-10)

बृहस्पति और इन्द्र अर्थात् जो ज्ञानवान् व जितेन्द्रिय को विशेष स्वर्ग मिलता है, वह मुझे प्राप्त हो। महर्षि दयानन्द जी ने नाकः (यजु. 15-49) को मोक्ष-सुख लिखा है। असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा।: (यजु. 35-22) यहाँ पर महर्षि ने स्वर्ग का अर्थ भी मोक्ष-सुख किया है। स्वर्गलोके: (यजु.23-20) सुखमय लोक। सुकृतस्य लोके। (यजु.15-50) पुण्यकर्मों से अर्जित लोक। येन स्वः स्तभितं येन नाकः (यजु.32-6) यहाँ पर स्वः का अर्थ सुख तथा नाकः का अर्थ सब दुःखों से रहित मोक्ष किया है। महर्षि ने बहुत से स्थानों पर अमृतम् का अर्थ भी (यजु.32-10, 25-13) मोक्ष-सुख किया है। अमरकोश के अनुसार-स्वरव्ययं स्वर्गनाकत्रिदशालयाः। सुरलोको द्यौर्दिवो द्वेस्त्रियां त्रिविष्टपम्।। (16) अर्थात् स्वः, अव्यय, स्वर्ग, नाक, त्रिदिव, त्रिदशालय, सुरलोक, द्यौ, दिवः और त्रिविष्टप आदि शब्द एक ही पदार्थ के वाचक हैं। स्वर्ग किसे प्राप्त होता है, इस सम्बन्ध में ऋग्वेद में आया है- **अविन्दद् दिवो...इन्द्रः परीवृता द्वार इषः परीवृताः।।** (ऋ.1-130-3) ज्ञानी पुरुष शरीरस्थ प्रभु का दर्शन करता है, जितेन्द्रिय बनकर वह प्रभु-प्रेरणा को सुनाता है और स्वर्गद्वारों को खोलने वाला होता है।

एकस्मै स्वाहा द्वाभ्यांस्वाहा शताय स्वाहैकशताय स्वाहा व्युष्टयै स्वाहा स्वर्गाय स्वाहा।। (यजु.22-34)

एक परमेश्वर की प्राप्ति के लिए स्तुति, प्रार्थना, उपासना और पुरुषार्थ करो। मन और जीवात्मा दोनों की शुद्धि के लिए स्तुति, प्रार्थना, उपासना और पुरुषार्थ करो। शतवर्ष की आयु प्राप्त करने के लिए पुरुषार्थ करो। एक सौ एक प्रणव जप और गायत्री जप के लिए तत्पर हो। अन्धकार दूर करके प्रकाश की प्राप्ति के लिए प्रयास करो। स्वर्गप्राप्ति के लिए प्रयास करो।

युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितुः सवे। स्वर्ग्याय शक्त्या।। (यजु.11-2)

योगाभ्यास से मन को स्थिर करने का प्रयास करें, प्रभु से आदिष्ट कर्मों में उसे यथाशक्ति लगाए रक्खें, यही स्वर्ग का मार्ग है। वेद में स्वर्ग की कामना वाले के लिए यज्ञ का अनुष्ठान् करने के लिए कहा गया है- स्वर्गकामो यजेत्। यजुर्वेद के अनेक मन्त्रों में यज्ञ के लाभ बताए गए हैं एक मन्त्र में कहा गया है-

स्वाहा यज्ञं मनसः स्वाहोरोरान्तरिक्षात् स्वाहा।
द्यावापृथिवीभ्याम् स्वाहा वातादारभे स्वाहा।।
(यजु.4-6)

हमारे मनों को, इस विशाल अन्तरिक्ष को, द्युलोक से लेकर पृथिवी तक रहने वाले सभी प्राणियों को व वायु को शुद्ध करने वाला यह यज्ञ ही श्रेष्ठतम कर्म है। हम अपने गृहस्थ को कैसे स्वर्ग बनाएँ, इस सम्बन्ध में वेद कहता है- (यजु.1-22) गृहस्थ को सन्तान निर्माण का आश्रम समझा जाए, सन्तानों को उस परमात्मा की धरोहर समझें, सन्तों में शक्ति और शान्ति के विकास का प्रयत्न करें, घर में अन्न की कमी न होने दें, अपनी शक्तियों को क्षीण न होने दें, शरीर-मन व मस्तिष्क इन तीनों का ठीक-ठीक विकास करें, अपने हृदय को विशाल बनाएँ, यज्ञों को हम शक्ति-विस्तार का साधन समझें, प्रभु-सम्पर्क से हम कभी अलग न हों और प्रभु-कृपा से हमारा ठीक परिपाक हो। यजुर्वेद (15-10 से 14) के मन्त्रों के अन्तिम पद में कहा गया है-

'नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु।।

यहाँ पर यजमान के लिए प्रार्थना की गई है कि उसे (नाकः) जहाँ दुःख है ही नहीं वहाँ तथा (स्वर्ग लोके) उत्तम कर्मों से अर्जनीय लोक में (सादयन्तु) स्थापित करें। इन्हीं मन्त्रों में यह भी बताया गया है कि वह यजमान इन स्थितियों को प्राप्त करने के लिए क्या-क्या करे। पत्नी ज्ञान-दीप्त, निरन्तर उन्नति-पथ पर बढ़ने वाली हो, धर्मार्थ व काम का समानुपात में सेवन करती

हो। घृतादि के प्रयोग से शरीर को स्वस्थ रखे। शरीररूप रथ से जीवन-यात्रा को पूर्ण करने का निश्चय करे। उसका जीवन व्यवस्थित हो, गृहकार्यों में निपुण हो, प्राण-शक्ति सम्पन्न हो। उसके प्राण, ज्ञानेन्द्रियाँ व कर्मेन्द्रियाँ स्वस्थ हों, उत्तम वस्तुओं का वह प्रशंसनीय प्रयोग करने वाली हो। 'वृद्धि' को जीवन का सूत्र बनाकर चले। वह उत्तमता से शासन करने वाली हो, वह मितभाषी हो तथा अच्छाइयों को ग्रहण करने वाले स्वभाव की हो। विशाल हृदय वाली हो। वह अपने शरीर, मन और बुद्धि तीनों को नवीन व परिपुष्ट बनाए रखे। पति सदा अग्नि अर्थात् अग्रणी हो, ऐश्वर्यशाली हो। वह सब प्रकार के द्वेषादि का निवारण करने वाला हो तथा स्वयं सौम्य और शान्त स्वभाव वाला हो। वह ऊँचे से ऊँचा ज्ञानी बनने वाला हो।

तऽउभौ चतुरः पदः सम्प्रसारयाव स्वर्गे लोके
प्रोर्णुवाथां। वृषा वाजी रेतोधा रेतो दधातु।।ः
(यजु.23-20)

सब पर सुखों की वर्षा करने वाले, शक्तिशाली तथा सर्व-सामर्थ्यवान् परमात्मा की कृपा से हम धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, इन चारों पुरुषार्थों को सिद्ध करके अपने को स्बर्गलोक में स्थापित करें।

अस्मान्त्वमधि जातोऽसि त्पदयं जाम्यतां पुनः।
असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा।। (यजु.35-22)

हे मनुष्यो! तुम लोगों को चाहिए कि इस जगत् में मनुष्यों का शरीर धारण कर विद्या, उत्तम शिक्षा, अच्छा स्वभाव, धर्म, योगाभ्यास और विज्ञान का सम्यक् ग्रहण करके मुक्ति सुख के लिए प्रयत्न करो और यही मनुष्य जन्म की सफलता है, ऐसा जानो।

त्रीन्त्समुद्रान्त्समसृपत् स्वर्गानपां पतिर्वृषभऽइष्टकानाम्।
पुरीषं वसानः सुकृतस्य लोके तत्र गच्छ यत्र पूर्वे परेताः।।
(यजु.13-31)

मनुष्य तीनों कालों में-भूत, वर्तमान व भविष्यत् में अथवा बाल्य, यौवन वा वार्धक्य में सदा कार्यों में लगा रहे, तभी इसके तीनों काल स्वर्ग बनते हैं। यज्ञशील पति घर में पत्नियों के जीवन को सुखी बनाता है। यह पालनात्मक कर्मों को करने वला व्यक्ति सदा पुण्यकृत् लोगों के लोकों को प्राप्त करता है।

❑❑

(पृष्ठ 6 का शेष)

महापराक्रमी, श्रेष्ठ गुणवाले, इन्द्र तथा वरुण के तुल्य राम को निश्चय ही समझने में भूल कर रहे हैं क्योंकि हे राजन्! न तो श्री राम को उनके पिता ने निकाला है, न वे किसी प्रकार से मर्यादाहीन हैं, न वह लोभी हैं, न वे आचरणहीन हैं, और न ही क्षत्रिय कुलकलंक हैं और

न च धर्मगुणैर्हीन, कौशल्यानन्दवर्धनः।
न तीक्ष्णो न च भूतानां सर्वेषामहिते रतः।

अर्थात् हे-राजन! कौशल्या के आनन्द को बढ़ाने वाले श्री राम न तो धर्महीन हैं, न ही गुणहीन हैं; न वे उग्रस्वभाव वाले हैं और न ही वे प्राणियों को सताते हैं; और हे रावण! श्रीराम के विषय में जो अनर्गल प्रलाप आपने किया है, ऐसा आपको नहीं करना चाहिए। प्रवुद्ध पाठकगण! ताड़का पुत्र मारीच का श्रीराम के विषय में उपरोक्त कथन सर्वथा सत्य है किन्तु श्रीराम भगवान् नहीं थे। सीता रावण को श्रीराम के गुणों को समझाती हुई कहती हैं कि

दद्यान्न प्रतिगृहणीयात्सत्यं ब्रूयान्न चानृतं।
एतद ब्राह्मण रामस्य ध्रुवं व्रतमनुत्तमम्।

अर्थात् हे ब्राह्मण! मेरे श्रीराम दान देते हैं, लेते नहीं; वे सत्य बोलते हैं, असत्य नहीं। श्रीराम का यह अटल एवं सर्वोत्तम व्रत है।

❑❑

मन्त्र गीत-राजा विशेष

('देवातिथि' देवनारायण भारद्वाज, अलीगढ़-202001 उ.प्र.)

सम्राट तुम्हारा धरा-देश
मैं निज मन का राजा विशेष।।
जैसी बजे दुन्दुभी तेरी।
वैसी बजे दुन्दुभी मेरी।
तव अश्व हिनहिनायें जैसे,
वैसी मेरी हो रणभेरी।
चित्त में हो पुरुषार्थ निवेश।
मैं निज मन का राजा विशेष।। 1।।
राजा ज्यों रण में ललकारें।
वैसी मेरी हो हुंकारें।
देवी सुभगा हृदय विराजें,
नित नूतन वर्चस्व निखारें।
रहे ऐश्वर्य का सन्निवेश।
मैं निज मन का राजा विशेष।। 2।।
राजा ने इन्द्रत्व प्रकाशा।
मेरा भी दायित्व खुलासा।
प्रजा पालना करता राजा,
यही मधुर मेरी अभिलाषा।
सुमङ्गल यह ईश्वर आदेश।
मैं निज मन का राजा विशेष।। 3।।

राजन्ये दुन्दुभावायतायामश्वस्य वाजे पुरुषस्य मायौ।
इन्द्रं या देवी सुभगा जजान सा न ऐतु वर्चसा संविदाना।। (अथर्व 6.38.4)

राष्ट्रोत्थान का सोपान-गृहस्थधर्म।

(ओम प्रकाश शास्त्री, मो-09416988351)

ऋषियों ने जिन चार आश्रमों (बृंह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास) का वर्णन किया है, उनमें गृहस्थ-आश्रम दूसरा आश्रम है। जैसे बृह्मचर्य-आश्रम पच्चीस वर्ष तक निश्चित है, ठीक इसी प्रकार गृहस्थाश्रम का कार्यकाल भी पच्चीस वर्ष का होता है। जिस प्रकार ब्रह्मचर्य-आश्रम में तप की, स्वाध्याय की, सन्तोष की, संयम की, साधना की, अहिंसा की, सत्य की, अस्तेय की, ब्रह्मचर्य की और अपरिग्रह की आवश्यकता होती है, ठीक उसी तरह उपरोक्त सभी नियमों की गृहस्थाश्रम में गृहस्थी को आवश्यकता होती है। जिस प्रकार उपरोक्त नियमों को जाने और माने बिना ब्रह्मचर्य-आश्रम का कोई अस्तित्व नहीं है, ठीक उसी प्रकार उपरोक्त नियमों के बिना हम सद्गृहस्थ की कल्पना नहीं कर सकते। प्रश्न उत्पन्न होता है, कि जब उपरोक्त नियमों पर ही दोनों आश्रमों (ब्रह्मचर्य और गृहस्थ) का अस्तित्व टिका हुआ है, फिर दोनों (आश्रमों) में अन्तर क्या है? इस प्रश्न का उत्तर तैत्तिरीय उपनिषद् की निम्न पंक्ति से स्पष्टतः प्राप्त हो जाता है, जिसमें लिखा है-"आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः अर्थात् आचार्य अपने शिष्य (जो पच्चीस वर्ष ब्रह्मचर्यक पूर्वक आचार्य के समीप रहे।) को उसके समावर्तन-संस्कार के अवसर पर उपदेश देते हुए कहते हैं कि हे शिष्य! प्रजा (सन्तान) उत्पत्ति के क्रम को मत तोड़ना। आचार्य का शिष्य को गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने तथा सन्तान उत्पन्न करने का आदेश है। आचार्य की उपदेश-शृङ्.खला का ध्यान पूर्वक अध्ययन करने से न केवल इस प्रश्न का उत्तर मिलता है कि ब्रह्मचर्य और गृहस्थाश्रम में क्या अन्तर है, अपितु इसके अलावा इस प्रश्न का भी उत्तर मिलता है कि कैसा गृहस्थी बनना है? धर्म का, सत्य का, स्वाध्याय का, संयम का और साधना का पालन करते हुए गृहस्थधर्म को निभाना, इसीलिए आचार्य को कहना पड़ा कि धर्मं चर, सत्यं वद और स्वाध्यायान्मा प्रमदः। उसके बाद कहा कि प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः। आचार्य प्रवर के उपरोक्त उपदेश से यह सहजतया समझा जा सकता है कि आचार्य अपने कुल में ब्रह्मचारी को तो ब्रह्मचारी बना ही रहे थे, इसके साथ ही गृहस्थी को भी ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी को भी ब्रह्मचारी और संन्यासी को भी ब्रह्मचारी बना रहे हैं। कैसा गृहस्थी बनना? धर्म का आचरण करने वाला गृहस्थी बनना। कैसा गृहस्थी बनना? स्वाध्यायशील गृहस्थी बनना। ऐसे न केवल गृहस्थी बनना, अपितु वानप्रस्थी और संन्यासी भी इसी प्रकार के बनना। आचार्य द्वारा शिष्य को दिये उपदेश के अनुसार ब्रह्मचर्य-आश्रम और गृहस्थाश्रम के मध्य जिस अन्तर को मैंने समझा है, उसके अनुसार गृहस्थ में ब्रह्मचारी को भिक्षाटन नहीं अपितु स्वयं कमाना है। बाकी ब्रह्मचर्य के सभी नियमों को अपनाते हुए गृहस्थी बने ब्रह्मचारी को सन्तान पैदा करनी हो। वो सन्तान, जो समाज में यश कमाने वाली है। वो सन्तान, जो माता-पिता की आज्ञा का पालन करने वाली हो। वो सन्तान; जो धन से, बल से, पद से, कद से सम्पन्न होने के बाद भी अहंकार-रहित व विनयशीलता से युक्त हो। वो सन्तान जिसमें अपने से बड़ों का मान-सम्मान करने के संस्कार कूट-कूटकर भरे हुए हों। ऐसे गृहस्थी जो अपनी सन्तानों के लिए चरित्र की, सुशीलता की, शिष्टाचार और सदाचार की पाठशाला बने हुए हैं वस्तुतः ऐसे गृहस्थी धन्य हैं, उनका ग्रहस्थाश्रम धन्य है। राष्ट्र, समाज की उन्नति के बहुत सारे साधन हैं लेकिन उपरोक्त गुणों से युक्त गृहस्थधर्म भी राष्ट्रोत्थान में महत्वपूर्ण साधन बन सकता है। उपर्युक्त गुणों से युक्त गृहस्थाश्रम राष्ट्र को उन्नति के उच्च शिखर पर ले जा सकता है। चाणक्य ने किस गृहस्थाश्रम को स्वर्ग कहा है? इसका उत्तर उन्होंने स्वयं अपने नीतिग्रन्थ चाणक्य नीति में देते हुए लिखा है कि-

सानन्दं सदनं सुतासतु सुधियः कान्ताप्रियालापिनी।
इच्छापूर्ति धनं स्वयोषिति रति स्वाज्ञापराः सेवकाः।
आतिथ्यं शिवपूजनं प्रतिदिनं मिष्टान्नपानं गृहे।
साधोः सङ्गमुपासते च सततं धन्यो गृहस्थाश्रमः।

अर्थात् जहाँ (गृहस्थाश्रम में) सन्तान बुद्धिमान है,

पत्नी प्रिय बोलने वाली है, इच्छापूर्ति करने में समर्थ धन है, अपनी पत्नी से सन्तुष्टि है, अतिथियों की सेवा और भगवान की भक्ति है, आज्ञा का पालन करने वाले सेवक हैं, शुद्ध, पवित्र, पौष्टिक खान-पान है, और साधुओं का, सज्जनों और विद्वानों का निरन्तर सान्निध्य प्राप्त होता है वस्तुतः ऐसा गृहस्थाश्रम धन्य है; ऐसे ग्रहस्थाश्रम को हम जहाँ स्वर्ग की अनुपम झांकी कह सकते हैं वहीं हम ऐसे गृहस्थ को राष्ट्रोत्थान का सोपान भी कह सकते हैं। मनुस्मृति का हवाला देते हुए महर्षि स्वामी दयानन्द जी संस्कारविधि के ग्रहाश्रम-प्रकरण में लिखते हैं कि-

यस्मात् त्रयोऽप्याश्रमिणो दानेनान्नेन चान्वहम्।
गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही।।
यथा नदीनदाः सर्वे सागरे यान्ति संस्थितिम्।
तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम्।।

अर्थात् जिससे ब्रह्मचारी वानप्रस्थ और संन्यासी इन तीन आश्रमियों को अन्न, वस्त्रादि दान से नित्यप्रति गृहस्थ धारण, पोषण करता है, इसलिए व्यवहार में ग्रहाश्रम सबसे बड़ा है। हे मनुष्यो! जैसे सब बड़े बड़े नद और नदी सागर में जाकर मिलते या स्थिर होते हैं, वैसे ही सब आश्रमी गृहस्थ को प्राप्त होके स्थिर होते हैं। महर्षि के उपरोक्त मन्तव्य से भी स्पष्ट है कि ग्रहस्थाश्रम राष्ट्र की आध्यात्मिक, सामाजिक, पारिवारिक, नैतिक, राजनीतिक और चारित्रिक उन्नति की अहम् कड़ी हैं। मुझे यह लिखने में कोई संकोच नहीं कि प्रायः पाश्चात्य सभ्यता के शिकंजे में फंसे हमारे गृहस्थ-जीवन से हमारे शाश्वत जीवन मूल्यों का तेजी से अवमूल्यन होता जा रहा है। पहले हमारे गृहस्थ जीवन के सम्बन्धों में व्यापकता थी लेकिन अब हमारे सम्बन्ध सिमटते जा रहे हैं। पहले गृहस्थ-जीवन में ईश्वरभक्ति, पितृभक्ति, राष्ट्रभक्ति थी, परन्तु आज यदि खत्म नहीं हुई है, तो उनमें अत्यधिक न्यूनता अवश्य आयी है। एक कटु सत्य यह भी है कि हमारा इस तरफ कोई विशेष ध्यान भी नहीं है, यदि समाज के मुख्य घटक कहें जाने वाले गृहस्थ धर्म का गम्भीरता से पालन किया होता, तो हमारा समाज आज जिन चुनौतियों से जूझ रहा है, उन पर विजय प्राप्त कर समाज को नई दिशा व दशा का प्रदान कर रहा होता। परन्तु बड़े खेद के साथ मुझे लिखना पड़ रहा है कि आज राष्ट्र की सर्वाङ्गीण उन्नति के साधन गृहस्थाश्रम केवल विषय-वासना की पूति के केन्द्र बनकर रह गये हैं। जिस गृहस्थाश्रम को सभी आश्रमों का आश्रय माना है, वही गृहस्थाश्रम आज अनेक चुनौतियों से जूझ रहा है। जो गृहस्थाश्रम कभी शान्ति के स्रोत व सद्भाव के केन्द्र माने जाते थे, आज वे अशान्ति और आन्तरिक कलह के स्थल बनते जा रहे हैं। पाठकगण कह सकते हैं कि क्या सभी गृहस्थ इस विडम्बना के शिकार हैं? उत्तर में मेरा यही निवेदन है कि सभी गृहस्थियों की तो ऐसी अवस्था नहीं है लेकिन अधिकांशतः उपरोक्त समस्याओं से प्रभावित हैं। राष्ट्र की सर्वतोमुखी उन्नति के घटक गृहस्थ धर्म को आज सुदृढ़ता प्रदान करने की आवश्यकता है। आज हम अपने राष्ट्र को दुनिया का यदि सिरमौर बनाना चाहते हैं, यदि अपने देश को पूरी दुनिया के लिए शान्तिदूत बनाना चाहते हैं, यदि पूरी दुनिया में अपने देश का सुयश फैलाना चाहते हैं, यदि हम अपने राष्ट्र को नैतिक, चारित्रिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक दृष्टि से मजबूत बनाना चाहते हैं, तो हमें अपने पूर्वजों के उसी मार्ग का अनुसरण करना पड़ेगा जिसे उन्होंने अपने गृहस्थ जीवन में अपनाया था। मर्यादा में रहकर ही वे गृहस्थ धर्म से खुद को और समाज को सुख-शान्ति का सन्देश दे पाये थे फिर वे चाहे श्री राम हों, श्री कृष्ण हो, राजा जनक हों, महर्षि याज्ञवल्क्य हो, उद्दालक हों। हमारे देश में ऐसे अनेक सद्गृहस्थी हुए हैं जिन्होंने राष्ट्रोत्थान में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। आओ, हम सब मिलकर सद्गृहस्थ-धर्म की सिमटती जा रही परम पावनी परम्परा को जागृत करने का प्रयास करें और राष्ट्रोत्थान के इस सोपान को तथाकथित आधुनिकता के शिकञ्जे में फंसने से बचाएँ और गृहस्थधर्म को राष्ट्र धर्म से जोड़ने का प्रयास करें, ताकि हमारा राष्ट्र, हमारा समाज अपने प्राचीन गौरव व उत्थान को प्राप्त कर सके।

बन सरदार पटेल, पापियों के गढ़ ढाओ

(पं. नन्दलाल निर्भय, भजनोपदेशक, आर्य सदन बहीन जनपद पलवल (हरियाणा)

नरेन्द्र मोदी जी सुनो! बात खोलकर कान।
श्रीमान जी कीजिए! देश-धर्म का ध्यान।।
देश-धर्म का ध्यान, करोगे, सुख पाओगे।
हे नेता जी! अमर, जगत में हो जाओगे।।
राम, कृष्ण, चाणक्य, शिवा से वीर बनो तुम।
साँगा से बलवान, हठी हम्मीर बनो तुम।।

भारतवासी आप पर, करते हैं विश्वास।
हे नेता जी! मत करो, हमको आप निराश।।
हमको आप निराश, करोगे, पछताओगे।
जाओगे तुम जहाँ, नहीं आदर पाओगे।।
आजमाए को बार-बार, आजमाना छोड़ो।
वीर साहसी बनो, कमर दुष्टों की तोड़ो।।

मुफ्ती मौहम्मद धूर्त को, नहीं देश से प्यार।
पापी पाकिस्तान का, है फरमावरदार।।
है फरमावरदार, प्रिय हैं आतंकवादी।
भारत की दिन-रात, रहा है कर बर्बादी।।
देश-द्रोह के बोल, कुचाली बोल रहा है।
भारत माँ का हृदय, दुष्ट वह छोल रहा है।।

भारत का गृहमंत्री, था जब बेईमान।
जालिम की करतूत को, याद करो गुणवान।।
याद करो गुणवान, बड़ा षड्यंत्र किया था।
हत्यारे थे पाँच, जिन्हें तब छोड़ दिया था।।
काशमीर में रात-दिवस, यह जुल्म करेगा।
याद रखो! यह गलत काम से नहीं डरेगा।।

पापी अफजल बेग से, इसे है बड़ा लगाव।
बनकर के मुख्यमंत्री, लगा चलाने दाँव।।
लगा चलाने दाँव, सँभल जाओ हे नेता।
नरेन्द्र मोदी बनो, बहादुर वीर विजेता।।
भला इसी में साथ-छोड़ दो, इस पापी का।
गला घोट दो, महा राक्षस संतापी का।।

लाखों पण्डित फिर रहे, भूखे-प्यासे आज।
ललनाओं की लूट ली, बदमाशों ने लाज।।
बदमाशों ने लाज, हजारों बालक मारे।
घूम रहे हैं निडर, यहाँ जालिम हत्यारे।।
हे नेताजी! दुखी जनों को गले लगाओ।
बन सरदार पटेल, पापियों के गढ़ ढाओ।।

पृष्ठ 11 का शेष

नारे लगाते हुए सहर्ष फाँसी चढ़ गये।

गोपाल गोडसे, विष्णु करकरे और मदनलाल पाहवा 17 वर्ष का आजीवन कारावास बिताकर श्री लाल बहादुर शास्त्री जी के समय 13 अक्तूबर 1964 को जेल से मुक्त हुए, पर नाथूराम गोडसे का वह ऐतिहासिक अदालती बयान तब भी मुक्त नहीं हो पाया, जिसमें उसने कहा था- "यदि देशभक्ति पाप है तो मैं मानता हूँ कि मैंने पाप किया। यदि प्रशंसनीय है तो मैं अपने आपको उस प्रशंसा का अधिकारी समझता हूँ। मुझे विश्वास है कि मनुष्यों द्वारा स्थापित न्यायालय के ऊपर अगर कोई न्यायालय है तो उसमें मरे काम को अपराध नहीं समझा जावेगा। मैंने देश और जाति की भलाई के लिए यह काम किया। मैंने उस व्यक्ति पर गोली चलाई जिसकी नीति से हिन्दुओं पर घोर संकट आए और हिन्दू नष्ट हुए।"

प्रिय पाठकवृन्द! हमने अतीत की घटना और उसके कारणों का अवलोकन किया। नेहरू सरकार द्वारा गाँधी जी की उपेक्षा और बम की घटना होने के बाद भी उनकी सुरक्षा के प्रति लापरवाही बरतना तथा हत्या के बाद वीर सावरकर (देश की स्वाधीनता के लिए जिसके 27 वर्ष जेल व जनरबन्दी में बीते) जैसे महान् देशभक्त और गुरु गोलवरकर (जिसने गाँधीवाद को प्राथमिकता देने कारण संघ संस्थापक डॉ. हेडगेवार के आदर्श सहयोगी वीर सावरकर व हिन्दू महासभा से ही दूरी बना ली थी) जैसे सेवाभावी संत को गाँधी-हत्याकाण्ड में आरोपी बनाकर जेल में डालना तथा गोडसे के अदालती बयान पर प्रतिबन्ध लगाना आदि यही सिद्ध करते हैं कि गोडसे को हत्यारा होने की अपेक्षा प्रचारित अधिक किया गया है, क्योंकि प्रचार हमारे दृष्टिकोण को प्रभावित करता है। पर यह भी सत्य है कि हमारे दृष्टिकोण से वस्तु (सत्य) का स्वरूप नहीं बदलता। काश! गाँधी जी ने हिन्दू हितों की हत्या न की होती!

विवाह और गृहस्थ

(रामनिवास गुणग्राहक)

आयोग्य लड़के-लड़कियों का गुण, कर्म, स्वभाव का मिलान किये बिना बेमेल विवाह कभी किसी के लिए सुखद नहीं हो सकता। ज्योतिष विद्या व गृह नक्षत्र राशि पर आधारित जन्म कुण्डली के मिलान से कुछ भी भला नहीं होता। ये फलित ज्योतिष और जन्म कुण्डलियाँ पाखण्ड और अन्ध विश्वास के अतिरिक्त कुछ भी नहीं। एक ही राशि वालों के सुख-दुःख व हानि लाभ कभी समान नहीं होते। राम और रावण दोनों एक राशि वाले थे, कृष्ण और कंस की भी एक ही राशि थी। क्या उनकें जवीन में, गुण कर्म, स्वभाव में, आचार-विचार में कहीं समानता मिलती है? इन व्यर्थ के बखेड़ों को छोड़कर, गुण, कर्म, स्वभाव तथा बल विद्या की समानता पर ध्यान देकर विवाह होने चाहिए। हमारे लोक हितैषी ऋषियों ने जहाँ विवाह पूर्व सब कुछ खोलकर एक दूसरे से पूछने व जानने की बात कही है, वहीं विवाह निश्चित हो जाने के बाद तथा संस्कार से पूर्व वर-वधु एक दूसरे के बारे में अपने स्तर पर भी पूर्ण जानकारी प्राप्त कर लें- ऐसा भी कहा है- **"जब विवाह करने का समय निश्चय हो चुके, तब कन्या चतुर पुरुषों से वर की और वर चतुर स्त्रियों से कन्या की परोक्ष में परीक्षा करावे। पश्चात् उत्तम विद्वान् स्त्री-पुरुषों की सभा करके दोनों परस्पर संवाद करें"!** वर-कन्या के गुणों पर प्रकाश डालने वाले कुछ वेद मन्त्रों को यहां प्रस्तुत करना सर्वथा उपयुक्त होगा। ऋग्वेद में आता है- **"जो कन्या अपने सदृश विदुषी, शुभ गुण, कर्म, स्वभाव वाली होवे, वही पत्नी रूप में स्वीकार करने योग्य है।** (4.51.3) वर के सम्बन्ध में भी वेदों में बड़ी सुन्दर चर्चा की है। ऊपर जिस परस्पर संवाद की बात की गई है, उसी संवाद शैली में वेद कन्या के मुख से वर के लिए कहलवाता है- **'हे युवक! मैंने सुना है- आप सत्य के पालन करने वाले व सज्जनों के रक्षक हैं। अपने पाँचों प्राणों और पाँचों ज्ञानेन्द्रियों को वश में कर लेने में आपका अद्वितीय यश है। श्रेष्ठ प्रशंसा, ऐश्वर्य और शकित के भण्डार- आपको मेरे पिता-भ्रता व हितैषियों ने मेरे लिए खोजा है। मैं आपका पति रूप में स्वागत करती हूँ।"** (5.32.11) इस मन्त्र में जहाँ वर के गुण, कर्म स्वभाव एवं योग्यता आदि का परिचय मिलताहै, वहीं वर के चयन में पिता, भ्राता व हितैषी परिजनों की सहमति भी होनी चाहिए- यह भी बताया गया है। वर-वधु के सम्बन्ध में एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण बात महर्षि दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश में लिखते हैं- **"जैसे पुरुषों को व्याकरण, धर्म और अपने व्यवहार (ब्राह्मण एवं क्षत्रिय आदि से सम्बन्धित) की विद्या तो न्यून से न्यून पढ़नी ही चाहिए, वैसे ही स्त्रियों को भी, व्याकरण, धर्म, वैद्यक गणित और शिल्प-विद्या अवश्य ही सीखनी चाहिए।"** यहाँ बड़ी रोचक बात यह है कि कन्या के लिए वर से कहीं अधिक शिक्षा का विधान है। वर के समान वह व्याकरण व धर्म का ज्ञान तो प्राप्त करे ही, उससे बढ़कर- वैद्यक गणित और शिल्प विद्या भी सीखे। आश्चर्य **तो यह जानकर भी होता है कि वह** वर से कहीं अधिक **इस विद्या को वर से कहीं कम समय में प्राप्त करे।** आज हम देखते हैं कि हमारी पुत्रियाँ शिक्षा के क्षेत्र में बड़े कीर्तिमान स्थापित कर रही हैं- इससे सिद्ध है कि प्राचीन ऋषि कन्याओं की इस विशेषता को भली भांति जानते थे। तब हमारी कन्याएँ ये सब विद्याएँ अल्प काल में ही प्राप्त कर लेती थीं। दुर्भाग्य से विगत चार-पाँच हजार वर्षों के कालखण्ड में हमारे कुछ धर्माचार्य कहे जाने वाले लोगों ने ब्राह्मणों के अतिरिक्त सबको वेदादि पढ़ने-सुनने तक के अधिकार से वञ्चित कर दिया, चाहे वह स्त्री ब्राह्मण ही क्यों न हो! ऐसी दुर्भाग्यजनक स्थिति में भी अपने अस्तित्व व स्त्रीत्व को सुरक्षित रखती चली आ रही स्त्री को महर्षि दयानन्द की कृपा से आज पुनः विद्या पढ़ने पढ़ाने का अधिकार

क्या मिला, नारी ने जीवन के हर क्षेत्र में अपना नाम स्वर्ण अक्षरों में लिखकर यह प्रमाणित कर दिया कि हमारे प्राचीन ऋषियों ने कम आयु में पुरुष से कही अधिक विद्या प्राप्त करने की व्यवस्था नारी के अन्दर की विशेष सामर्थ्य को अपनी अन्तर्दृष्टि से देखकर ही की थी- और नारी तब से लेकर अब तक उनकी इस कसौटी पर पूरी तरह खरी सिद्ध हुई है।

वर्णस्थ विवाह- वैदिक समाज व्यवस्था में हमारे ऋषियों ने दो महत्वपूर्ण व्यवस्थाएँ दी हैं। ऋषियों ने उन्हें समवेत् स्वर से 'वर्ण-आश्रम व्यवस्था कहा है। यह विवाह संस्कार ऐसा महत्वपूर्ण अवसर है कि जहाँ यह युवक-युवती को ब्रह्मचर्य आश्रम से छुड़ाकर गृहस्थ आश्रम में प्रवेश कराता है, वहीं उन दोनों के जीवन की दिशा निर्धारित करने वाले वर्ण का निर्धारण भी करता है। आज की यह जाति प्रथा एक प्रकार से वर्णव्यवस्था का ही बिगड़ा रूप है। बिगड़ा इसलिए कि वर्ण तो व्यवस्था है जो सोच विचार कर, मनुष्य के गुण कर्म स्वभाव की जाँच परख करके योग्य आचार्यों द्वारा प्रत्येक व्यक्ति की निर्धारित की जाती है, और अपने वर्ण कर्त्तव्य कर्मों का निर्वाह करते रहने पर वह जीवन भर (गृहस्थ जीवन काल) उसी वर्ण का होकर रह जाता है। मनु कहते हैं-

'आचार्यस्त्वस्य यां जातिं विधवत वेद पारगः!
उत्पादयति सावित्र्या सासत्या साऽ जरामराः।।
(2.148)

अर्थात् वेद विद्या पारंङ्गत आचार्य विधि अनुसार गायत्री की दीक्षा देकर जिस जन्म (वर्ण) को प्रदान करता है, वही जन्म सत्य होता है, वही अजर-अमर अर्थात् न क्षीण होता न मृत्यु पर्यन्त नष्ट होता है। आचार्य द्वारा दिया गया यह विद्या जन्म विद्या की समाप्ति अर्थात् दीक्षान्त समारोह के अवसर पर दिया जाता है। और विवाह के समय जो वर-वधु के तुल्य समान गुण कर्म स्वभाव की बात कही जाती है, वहाँ वर्ण का भी पूरा ध्यान रखा जाता है। महर्षि दयानन्द लिखते हैं- **'जो पूर्ण विद्वान्, धर्मात्मा, परोपकारी जितेन्द्रिय, मिथ्या भाषणआदि दोषरहित, विद्या और धर्म प्रचार में तत्पर रहे- इत्यादि उत्तम गुण जिसमें हों, वह ब्राह्मण-ब्राह्मणी! विद्या-बल, शौर्य न्यायकारित्वादि गुण जिसमें हो वह क्षत्रिय-क्षत्रिया और विद्वान् होके कृषि, पशुपालन, व्यापार, देश-भाषाओं में चुतरतादि गुण जिसमें हों- वैश्य-वैश्या और जो विद्याहीन मूर्ख हों वह शूद्र-शूद्रा कहावें। इसी क्रम से विवाह होने चाहिए, अर्थात् ब्राह्मण का ब्राह्मणी से, क्षत्रिय का क्षत्रिया से, वैश्य का वैश्या से और शूद्र का शूद्रा के साथ ही विवाह होने में आनन्द होता है- अन्यथा नहीं।"**

आज भी यह देखा जाता है कि लड़का डॉक्टर है तो लड़की भी डॉक्टरनी चाहता है, लड़की अध्यापिका है तो परिवार वालों की इच्छा होती है कि लड़का अध्यापक ही हो। चाहे आज इसे हम कोई भी नाम या रूप देकर पुकारें- सच में यह गुण कर्म, स्वभाव और व्यवसाय का मेल देखना हमारे प्राचीन ऋषियों की व्यवस्था का अनुमोदन करता है। इन सबको देखकर यह तो मानना ही पड़ेगा कि हमारे ऋषि मुनियों ने जीवन के हर क्षेत्र में अपनी दूर दृष्टि से गहराई तक जाकर जो कुछ चिन्तन किया, जो कुछ व्यवस्था दीवह इतनी सटीक व शाश्वत चिन्तन पूर्ण व्यवस्था थी कि अपने आपको विज्ञान के उन्नत युग में सर्वोच्च शिखर पर मानने वाला मानव भी उस ऋषि-व्यवस्था के मूल सिद्धान्तों के आस पास ही चहल कदमी करता हुआ दिखता है! यही तो ऋषियों का ऋषित्व है, जिसे देखकर आज भी हमारा सिर उनके प्रति श्रद्धापूर्वक झुका रहता है। दुःख तो यह है कि हमारी नई पीढ़ी ऋषियों के साहित्य को पढ़ती ही नहीं।

विवाह संस्कार : एक विवेचन : विवाह के सम्बन्ध में हम चर्चा कर ही चुके हैं- यहाँ संस्कार शब्द पर विचार करके तब आगे बढ़ेंगे। ऋषियों के अनुसार- 'संस्कारोहि गुणांन्तराधानमुच्यते' अर्थात् गुणों के अन्तर-आधान को ही संस्कार कहते हैं। मनुष्य की प्रवृत्ति तीन प्रकार की होती है- सतोगुणी, रजोगुणी और तमोगुणी। मनुष्य के अन्तर हृदय में जिस समय जो गुण प्रधानता से हो, मुख्यधारा

में हो, उस समय वह उसी गुण के प्रभाव में सोचता बोलता व कार्य व्यवहार करता है। सामान्य व्यवहार इस बात को प्रमाणित करता है कि किसी धर्म चर्चा व सत्संग सभा में बैठे हुए स्त्री पुरुष प्रायः पवित्र भावना, दया व कोमलता से युक्त रहते हैं, तो परस्पर के विवाद के समय जब बात झगड़े तक जा पहुँची हो तो सम्बन्धित स्त्री पुरुषों के अन्तरहृदय में हिंसक भावना, क्रोध और उद्विग्नता का ही बोलबाला दिखता है। सत्संग वाली स्थिति को सतोगुणी और झगड़े वाली स्थिति को तमोगुणी कहते हैं। हमारे ऋषियों ने मनुष्य जीवन को क्रोध व हिंसा जैसे तमोगुणी आवेशों से बचाकर सतोगुणी स्वभाव में बने रहने और इसी से प्रेरित होकर श्रेष्ठ कर्म करते हुए आनन्द प्राप्त करने के लिए संस्कारों का निर्माण किया है। हम खाने-पीने मौज उड़ाने, बनने संवरने की भावना से तथा क्रोध, हिंसा जैसे तमोगुणी प्रवृत्ति से बचकर सतोगुण में वर्तमान रहकर श्रेष्ठ विचारों व मानवीय भावनाओं से ओत प्रोत रहकर श्रेष्ठ कर्म करते हैं- इसके लिए संस्कार किये कराये जाते हैं। हमें दोषों व दुर्गुणों के साथ साथ दुःखों व दुर्गतियों से बचाने के लिए हमारे ऋषियों ने यह संस्कार श्रृंखला बनाई। समय-समय पर हमारी स्थिति व अवस्था के अनुकूल यज्ञ जैसे वैदिक अनुष्ठान के साथ हमारे आन्तरिक दोषों को दूर करने के लिए बड़े ही वैज्ञानिक ढंग से उपाय किये जाते हैं विवाह संस्कार भी उन्हीं में से एक है।

विवाह संस्कार शेष सभी संस्कारों में सब से अधिक बड़ा (लम्बा) है, सबसे अधिक महत्वपूर्ण एवं विविधताओं से भरा हुआ है। इस संस्कार में छोटी-मोटी अनेक प्रक्रिया हैं जिनमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण है-पाणिग्रहण। इसके महत्व का पता इसी से चल जाता है कि विवाह संस्कार का एक नाम 'पाणिग्रहण संस्कार' भी हैं! हम यहाँ इस संस्कार की सम्पूर्ण व्याख्या करना नहीं चाहते- हम यहाँ यह बताना ही उचित समझते हैं कि इस संस्कार के माध्यम से वर-वधु के जीवन में जो परिवर्तन आता है- इस संस्कार के द्वारा उसे वो समझ सके। नये जीवन के उत्तरदायित्वों का सम्यक् ज्ञान कराकर उन उत्तरदायित्वों के सफल निर्वाह करते रहने की शिक्षा विवाह संस्कार की अधिकांश प्रक्रियाओं में भरी पड़ी है- उन सबका समुचित ज्ञान कराना तथा उन उत्तरदायित्वों के गृहस्थाश्रम के कर्त्तव्यों का पालन करने के लाभ, न करने की हानियों पर भी चर्चा की जाएगी। कुल मिलाकर विवाह संस्कार का मोटा सा स्वरूप और उसकी महनीय मर्यादाओं का बोध कराना ही हमारा उद्देश्य है। यह इसलिए आवश्यक है कि आजकल हमारे सनातनधर्मी कहलाने वाले पौराणिक पण्डितजी तो विवाह संस्कार के वैदिक स्वरूप को नितान्त भुला चुके हैं वे चार श्लोक गणेश के बोल देते हैं, चार बातें शिव-पार्वती के विवाह का नाम लेकर सुना देते हैं, गृहों के पूजन का नाम लेकर रुपये रखवाकर अन्त में मनमानी दक्षिणा लेकर अन्तर्ध्यान हो जाते हैं! विद्या और विवेक की बात करना, विवाह संस्कार की हर छोटी-मोटी प्रक्रिया में छुपे वेद व ऋषियों के सन्देश को वर-वधु को भली भांति समझाना-ये सब लगभग छूट सा गया है। ऐसे में अधिक कुछ नहीं तो यह सब पढ़ कर हमारे गृहस्थ स्त्री-पुरुष अपने कर्त्तव्य कर्मों और परस्पर के श्रेष्ठ व्यवहारों को भली भाँति जान सकें। हमारे अनेक गृहस्थ जन यह जान समझकर अपना जीवन उचित ढंग से जी सकते हैं, अपने गृहस्थ को सुख-सौभाग्य से भर सकते हैं। जिस घर में सब एक दूसरे के प्रति सद्व्यवहार करते हैं, वहाँ सदैव सुख समृद्धि का साम्राज्य रहता हैं जहाँ घर के सदस्यों का व्यवहार एक दूसरे के प्रति कठोर कड़वा और कपटपूर्ण होता है, वहाँ क्लेश, कलह व कष्टों की भरमार रहती है। आज सर्वथा यही हो रहा- हम सबका कर्त्तव्य है कि परिवारों को स्वर्ग का नमूना बना कर इस समाज व राष्ट्र को सुख शान्ति समृद्धि से भर दें।

हम पूर्व में भी यह प्रकट कर चुके हैं कि हम यहाँ विवाह की सभी छोटी बड़ी प्रक्रियाओं का परिचय देकर उचित नहीं समझते। हमारा उद्देश्य तो यह है कि विवाह संस्कार के माध्यम से वर-वधु के लिए जो गृहस्थ-प्रशिक्षण दिया जाता है, इस विवाह नामक गृहस्थ-प्रशिक्षण शिविर

की कतिपय महत्वपूर्ण शिक्षाओं को सभी गृहस्थ स्त्री-पुरुष जान लें। जिनके विवाह हो चुके हैं वे भी यह समझ लें कि गृहस्थ में सुख शान्ति व समृद्धि के लिए हमारा पति-पत्नी का व्यवहार कैसा हो? तथा परिवार के शेष सदस्यों के प्रति हम कैसा व्यवहार करें। इसी प्रकार जिनका विवाह अभी नहीं हुआ, निकट भविष्य में होने वाला है, वे भी गृहस्थ की मर्यादाओं को समझकर स्वयं को उसके लिए तैयार कर लें। आज गृहस्थ की समस्याएँ बड़ी विकट हैं, आज पूरा विश्व एक ग्राम बनकर रह गया है। आज हमारे जीवन पर पाश्चात्य कुसंस्कृति का कुप्रभाव जीवन के हर क्षेत्र में देखा जा सकता है। हमारा सामाजिक जीवन, हमारा राष्ट्रीय जीवन, हमारा पारिवारिक जीवन और हमारा व्यक्तिगत जीवन- इनमें कहीं भी भारतीय संस्कृति के उच्च आदर्श, हमारी मान्यताएँ व धारणाएँ, हमारे जीवन मूल्य दिखाई नहीं देते। कहाँ तो वेदों में स्वयं इस वैदिक संस्कृति को 'विश्ववारा' अर्थात् मानव मात्र के लिए वरण करने, स्वीकार करने योग्य बाताया है और कहाँ हम हैं कि परम पिता परामात्मा द्वारा दी गई, ऋषि महर्षियों द्वारा जीवन में स्वीकार करके अनुमोदित की गई वैदिक संस्कृति को अपने जीवन से ही बाहर निकाल फेंकने में लगे हुए हैं। हमारे समस्त दुःख, क्लेश, कष्ट व विपत्तियों का मूल कारण हमारी यह आत्मघाती प्रवृत्ति ही है कि हम अपने ऋषि महर्षियों के अनुभव पर आधारित जीवन सम्बन्धी शिक्षाओं को छोड़कर पश्चिमी भौतिकतावादी जीवन शैली को स्वीकार कर रहे हैं। हमारा विवाह संस्कार एक प्रकार से एक छोटा सा ट्रेनिंग कैम्प है- यहाँ गृहस्थ जीवन की ट्रेनिंग दी जाती है। यदि बिना ट्रेनिंग दिये किसी सैनिक को सीमा पर भेज दिया जाए, बिना ट्रेनिंग दिए किसी इन्जीनियर को पुल बनाने या किसी डॉक्टर को चिकित्सालय में लगा दिया जाए तो क्या परिणाम निकलेगा- यह सब जानते हैं। ठीक वैसा ही परिणाम हमारे उन गृहस्थ जनों का होगा, जो विवाह नामक ट्रेनिंग कैम्प (प्रशिक्षण शिविर) की शिक्षा पाये बिना अथवा उस शिक्षा को जीवन में ढाले बिना गृहस्थ की गाड़ी में खींचने लग जाते हैं। राष्ट्र व मानव जाति के उत्थान का रास्ता एक सुखी समृद्ध व सदाचार सम्पन्न गृहस्थ ही तैयार करता है। एक सुखी-समृद्ध व सदाचारी गृहस्थ का निर्माण विवाह नामक प्रशिक्षण शिविर में होता है।

हमारे ऋषियों की व्यवस्था है कि विवाह के दिन वर-वधु दोनों अपने-अपने घर विधिपूर्वक यज्ञ करें। यज्ञ किये पश्चात् वर महोदय जब कन्या के घर प्रवेश करें तो सर्वप्रथम स्वागत सत्कार किया जाता है। यह कार्य कन्या पक्ष के कार्यकर्त्ता व कन्या संयुक्त रूप से करते हैं। मूल शिक्षा तो वर-कन्या को ही देनी है कि उन्हें गृहस्थ बनने पर आने वाले अतिथियों का स्वागत-सत्कार कैसे करना है। कन्या हाथ जोड़ कर वर को आइये! आपका स्वागत है, कहकर बैठने को आसन देती है। वह उस पर बैठ जाता है तो हाथ मुँह व पाँव धोने के लिए जल देती है। उसके बाद कुछ खाने-पीने का प्रसंग आता है तो आचमन हेतु जल देकर मधुपर्क दिया जाता है! मधुपर्क में ताजा दही में शहद या घृत मिलाया जाता है। कई महानुभाव दोनों को मिलाने की बात कहते हैं तीनों को मिलाकर एक उत्तम रसायन बनता है। आयुर्वेद की दृष्टि से बात करें तो दही-बल, वीर्य वर्धक तथा वातनाशक होता हैं शहद-शीतल अग्नि वर्धक तथा कफ दोष को नष्ट करता है! घृत कान्ति बढ़ाता है, बुद्धिवर्धक है, विषनाशक और पित्त दोष को नष्ट करता है। इस प्रकार इस श्रेष्ठ मिश्रण के माध्यम से वधु को यह सीख दी जाती है कि वह पति गृह जाकर जब भोजन तैयार करे तो ध्यान रखे कि भोजन में जहाँ स्वाद का ध्यान रखा जाता हैं, वहीं स्वास्थ्य का उससे कहीं अधिक ध्यान रखा जाना चाहिए। पूर्व में हम देख चुके हैं कि जहाँ कन्याओं की शिक्षा की बात कही है, वहाँ कन्या को वैद्यक शास्त्र पढ़ने की बात भी कही है। बिना वैद्यक पढ़े वह वधु बनकर ऋतु के अनुकूल भोजन कैसे बना पाएगी? सम्भव है परिवार में किसी व्यक्ति का कोई दोष (वात, पित्त या कफ) कुपित हो तो उसके लिए अनुकूल भोजन का ध्यान भी उसे ही रखना है।

□□

आर./आर. नं० १६३३०/६७
Post in Delhi R.M.S
०५-११/५/२०१५
भार- ४० ग्राम

मई 2015

रजिस्टर्ड नं० DL (DG -11)/8029/2015-17
लाईसेन्स नं० यू (डी०एन०) १४४/२०१५-१७
Licenced to post without prepayment
Licence No. U (DN) 144/2015-17

पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य ही लिखा करें, अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।
२. १५ तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मँगाएं, यदि अंक न पहुँचा हो।
३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक-प्रेषण एक माह बाद आरम्भ होगा।
४. अंक के रेपर पर अपना पता चैक कर लिया करें। यदि कोई त्रुटि हो, तो सूचना दे दिया करें।
५. जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है, अविलम्ब भेजने की कृपा करें।

— दिनेश कुमार शास्त्री
कार्यालय व्यवस्थापक
मो०-९६५०५२२७७८

ओ३म्

भारत में फैले सम्प्रदायों की निष्पक्ष व तार्किक समीक्षा के लिए उत्तम कागज़, मनमोहक जिल्द, सुन्दर आकर्षक छपाई एवं (द्वितीय संस्करण से मिलान कर शुद्ध प्रामाणिक संस्करण)

सत्य के प्रचारार्थ

सत्यार्थ प्रकाश

सत्य के प्रचारार्थ

● प्रचार संस्करण (अजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 50 रु.	प्रचारार्थ 30 रु.	प्रचारार्थ मूल्य पर कोई कमीशन नहीं
● विशेष संस्करण (सजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 80 रु.	प्रचारार्थ 50 रु.	
● स्थूलाक्षर सजिल्द 20×30÷8	मुद्रित मूल्य 150 रु.		प्रत्येक प्रति पर 20% कमीशन

10 या 10 से अधिक प्रतियाँ लेने पर विशेष अतिरिक्त कमीशन

कृपया, एक बार सेवा का अवसर अवश्य दें और महर्षि दयानन्द की अनुपम कृति सत्यार्थ प्रकाश के प्रचार प्रसार में सहभागी बनें

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट
427, मन्दिर वाली गली, खारी बावली, दिल्ली-6
Ph. :011-43781191, 09650622778
E-mail : aspt.india@gmail.com

छपी पुस्तक/पत्रिका

श्री सेवा में ....
ग्राम ....
डा0 ....
जिला ....

मुद्रक, प्रकाशक व सम्पादक धर्मपाल आर्य, स्वामित्व आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, 427, गली मन्दिर वाली, नया बांस, खारी बावली, दिल्ली-110006 से प्रकाशित एवं तिलक प्रिंटिंग प्रेस, 2046, बाजार सीता राम, दिल्ली-110006 से मुद्रित।